आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च

विवेक-शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा की प्रमुख हिन्दी मासिकी

वर्ष–२० | जनवरी-फरवरी–२००१ | अंक–१-२
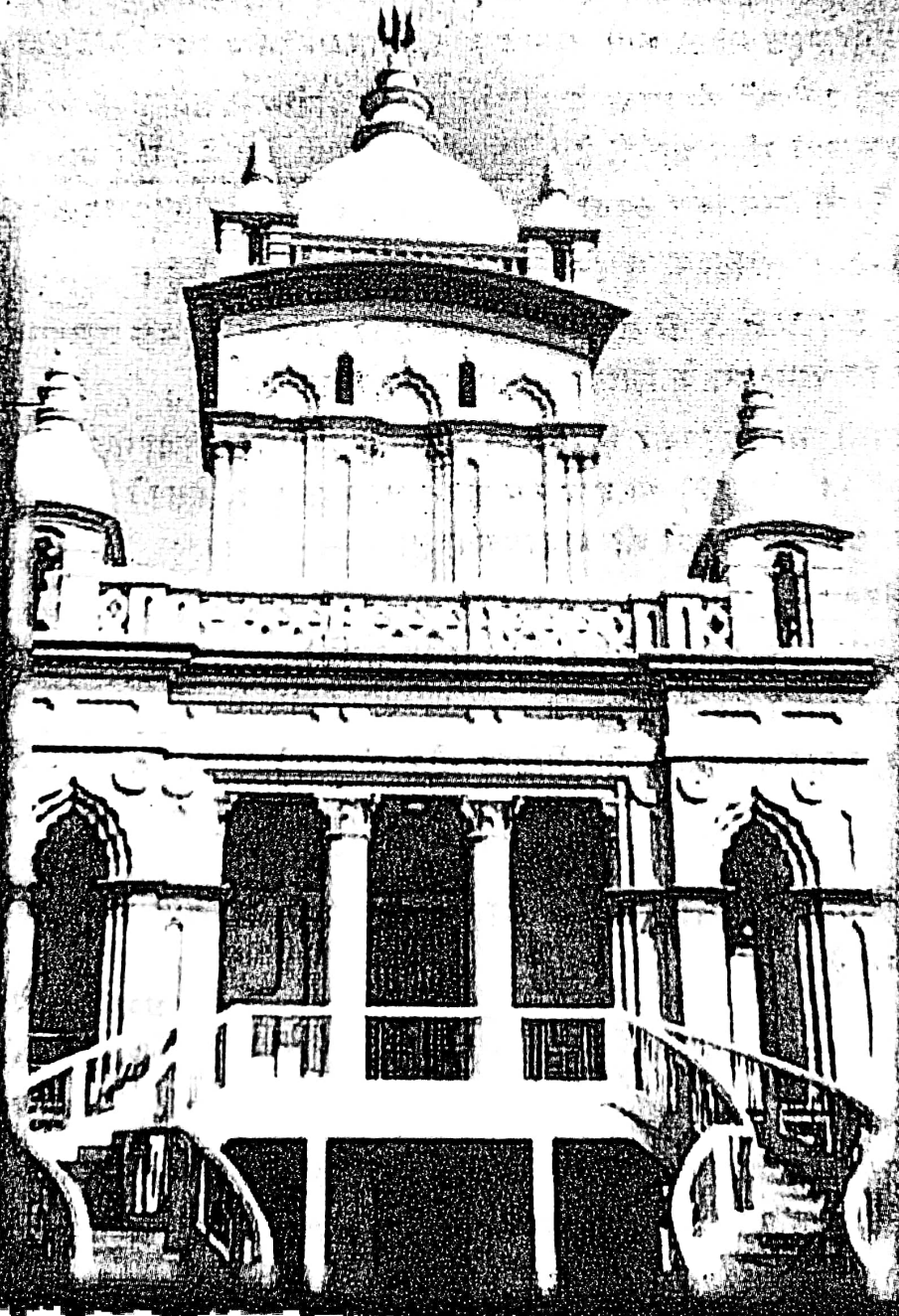
रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ

रामकृष्ण नगर विद्यापीठ, देवघर–814 112 (बिहार)

एक निवेदन

भगवान श्री रामकृष्णदेव, माँ सारदा तथा स्वामी विवेकानन्द के पावन पदरज से तीर्थीकृत तथा स्वामी विवेकानन्द स्मृतिविजड़ित आकर्षण केन्द्र, ज्योतिर्लिंग बाबा वैद्यनाथ की इस पुनीत नगरी देवघर में रामकृष्ण संघ द्वारा संचालित प्रथम आवासीय शिक्षण संस्थान रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ की स्थापना सन् 1922 में हुई। भगवान श्री रामकृष्ण देव के अन्यतम पार्षद स्वामी तुरीयानन्दजी महाराज से अनुप्राणित तथा स्वामी विवेकानन्द के शिक्षादर्शों पर आधारित आज से 77 वर्ष पूर्व स्थापित यह शिक्षण सस्थान आज पूरे भारतवर्ष में विख्यात है। रामकृष्ण संघ के द्वितीय परमाध्यक्ष परमपूजनीय श्रीमत् स्वामी शिवानन्दजी महाराज ने भविष्यवाणी की थी—'इस विद्यापीठ के माध्यम से भविष्य में बहुत महान कार्य सम्पन्न होंगे, इसका भविष्य बड़ा ही उज्ज्वल है।'

अपने विगत 77 वर्षों की यात्रा के दर्म्यान इस विद्यापीठ ने अपनी उपलब्धियों की दृष्टि से एक शताब्दी से अधिक वर्षो की यात्रा को है। "बाल कल्याण के क्षेत्र में इसके उत्कृष्ट कार्यों के लिए राष्ट्रीय पुरस्कार" से इसे सम्मानित करना एक प्रमाणक है। इसी से माध्यमिक शिक्षा की केन्द्रीय परिषद् (सी०बी०एम०ई०) नई दिल्ली ने इसे स्थायी सम्बद्धता प्रदान की है।

विद्यापीठ में (V से X वीं कक्षा तक) कुल 307 छात्र हैं। इसके आवासीय खण्ड में 12 धाम (प्रखण्ड) हैं जो कि रामकृष्ण के शिष्यों के नाम पर रखे गये हैं।

अब आपको यह जानकर निश्चय ही प्रसन्नता होगी कि विद्यापीठ अप्रैल 2000 ई० से "+2 कक्षाएं" (वर्ग 11 और 12) का शुभारंभ करने जा रहा है। इसकी आवश्यक संरचना के विकास के लिए प्राय: 60 लाख रुपयों की आवश्यकता होगी—

- छात्रावास—परिसर का निर्माण
  (छात्रावास, प्राथना-भवन, भोजनालय आदि) — 54 लाख रुपये
- उपस्कर, प्रयोगशालाओं का उन्नतिकरण
  (भौतिक शास्त्र, रसायण शास्त्र, जीव-विज्ञान और कंप्यूटर) — 6 लाख रुपये

कुल 60 लाख रुपये

अत: हम अपने मित्रों और भक्तों से इस उत्कृष्ट प्रयास के लिए उदारता-पूर्वक सहायता करने का अनुरोध करते हैं।

प्रभु-सेवा में आपका,
स्वामी सुवीरानन्द
सचिव

नोट :—1. रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ, देवघर के नाम से ही चेक या ड्राफ्ट भेजे जाएं।
2. रामकृष्ण मिशन को दिया गया दान आयकर की धारा 80 (G) के अंतर्गत आयकर से मुक्त है।

उत्तिष्ठत् जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा की प्रमुख

हिन्दी मासिकी

जनवरी 2001

सम्पादक

डॉ० केदारनाथ लाभ

सहायक सम्पादक

ब्रज मोहन प्रसाद सिन्हा

आजीवन ग्राहकता शुल्क (२० वर्षों के लिए) ७००/-

सम्पादकीय कार्यालय

विवेक-शिखा

रामकृष्ण निलयम्

जयप्रकाश नगर

छपरा-841301 (बिहार)

दूरभाष : (06152) 22639

इस अंक में

स्वामी विवेकानन्द-स्तवन

श्री सारदात

(१)

जय जय स्वामी विवेकानन्द।
जय वीरेश्वर भ्रमहर भास्कर, आशुतोष शिव, जय सुखकन्द।।
त्रिभुवन-पावन, नरन्नारायण, विमलबोधघन, ब्रह्मपरायण।
भवभय वारण, जगदुद्धारण, नित्यमुक्त, जय गत भवबन्ध।।
युगनायक युगधर्म सहायक, चित्त प्रकाशक, शुभमतिदायक।
मोहपुंजहर, मोक्ष-विधायक, वीर धीर निर्भय स्वच्छन्द।।
निद्रितचित्त-प्रबोधनकारी, मुग्धजीव-जड़ता-परिहारी।
रामकृष्ण लीला सहचारी, नाश करो प्रभु भवदुःख द्वन्द्व।।

(२)

जयतु विवेकानन्द योगिवर युगाचार्य यतिराज।
जय वीरेश्वर, जय शिवशंकर, तपस त्याग-अधिराज।।
ध्यानपरायण नर नारायण तज अखण्ड का राज।
जीवदुःखहरण करत अवतरण, धार संन्यासी साज।।
मोहतिमिरहर प्रखर दिवाकर उदित, जगतहित काज।
तम नाशत, जड़ चित्त जगावत चेतत सकल समाज।।
मूर्त विवेक-विराग-ज्ञान-बल, त्रिभुवन के सिरताज।
सकल अविद्या भ्रान्ति हरो प्रभु, चित्त में करो विराज।।

नयी सहस्राब्दी: नया मनुष्य

मेरे आत्मस्वरूप मित्रो,

विवेक शिखा इस अंक के साथ ही अपने बीसवें वर्ष में प्रवेश कर रही है-एक नयी सहस्राब्दी-तीसरी सहस्राब्दी-में प्रवेश कर रही है। भगवान् श्रीरामकृष्ण देव, परम पावनी जगन्माता श्री सारदा देवी और विश्वाचार्य स्वामी विवेकानन्द की अकारण अशेष कृपा का ही यह अमृत-फल है।

मैं हैरान हूँ। न पूँजी, न पैसा, न दफ्तर न कर्मचारी। मगर यह पत्रिका है जो चलती जा रही है-देर सबेर, जैसे तैसे। रामकृष्ण मिशन के कुछ वरेण्य साधु-संन्यासियों का, अपने पावन त्रिदेवों के कुछ समर्पित भक्तों का एवं कुछ पाठकों-शुभेच्छुओं का सहयोग इसे मिलता रहा है और विवेक शिखा का ज्योति-रथ चलता चला जा रहा है -

रामकृष्ण-विवेकानन्द भावादर्शों का धर्म-ध्वज धारण कर नगर-डगर में, गाँव-गह्वर में-आसेतु हिमाचल तक।

मैं प्रणत-विनत हूँ अपने त्रिदेवों के चरणारविन्दों पर, श्रद्धावनत हूँ अपने पूज्य

साधु-संतों के चरण-सरोज पर तथा स्नेहावनत हूँ अपने सहयोगी भ्राताओं-भगिनियों, ग्राहक-ग्राहिकाओं के उदार, वदान्य चित्-पद्म से निःसृत स्नेह-सौरभ के समक्ष।

मैं जानता हूँ, विवेक शिखा के प्रकाशन के पथ पर गत वर्ष वाधा-व्यवधानों के नुकीले रोड़े कुछ ज्यादा ही आ खड़े हुए। हमने और आपने मिल-जुलकर इसकी चुभन को, इसके दंश-दाह को झेला है। मैं विवश-निरुपाय था, आप सदय-सहृदय वने रहे। वर्ष गुजर गया। नयी सहस्राब्दी आ उपस्थित हुई है। मुझे पूर्ण विश्वास है,आप हमारी त्रुटियों-असमर्थताओं और विफलताओं को विस्मृत कर अपने सहयोग के वरदहस्त प्रदान कर अपने विपदभंजन रूप का निर्वाह करते रहेंगे और विवेक शिखा का ज्योति-रथ अपने दिव्य भावों का, धर्म-अध्यात्म का घर्घर नाद करता हुआ आगे बढ़ता रहेगा,आगे बढ़ता रहेगा।

मित्रो, हमने ईस्वी सन् की दृष्टि से, दो हजार वर्षों की अपनी यात्रा पूरी कर ली है। अब तीसरी सहस्राब्दी में हम इसी माह प्रवेश कर रहे हैं। हम चलते रहे हैं, हम चलते रहेंगे। किन्तु, निरुद्देश्य यात्रा हमें थकाती रही है, भ्रमित करती रही है, पथभ्रान्त और दिशाहारा करती रही है। आगे भी करती रहेगी अगर हम थोड़ा रुक कर चिन्तन नहीं करते कि हमारी यात्रा का उद्देश्य क्या है, हमारी मंजिल कहाँ है।

इन दो हजार वर्षों में हमने वहुत कुछ खोया है, बहुत कुछ पाया है। हमने अंतरिक्ष पर विजय पायी है और आज अंतरिक्ष युगके मानव हो गये हैं। हमने अनेक ऊर्जाओं का अविष्कार किया है-विद्युत ऊर्जा, पेट्रोल ऊर्जा, नाभकीय ऊर्जा आदि अनेक ऊर्जाओं का उपयोग कर हमने अपने सुख के दसों द्वार खोल लिये हैं। कम्प्यूटर, सॉफ्टवेयर, इंटरनेट आदि के द्वारा हमने संचार माध्यमों में अद्भुत विकास किया है। अभी हम विकास की अन्य अनेक दिशाओं की ओर भी बढ़ेंगे।

किन्तु, इन वर्षों में हमारी चारित्रिक ऊर्जा में तीव्र ह्रास हुआ है। मानव उर्जा संसाधनों में तेजी से गिरावट आयी है। बाह्य प्रकृति पर विजय के उत्साह में हमने अपनी अर्न्तप्रकृति की घोर उपेक्षा की है। परिणाम! हम भोगवादी हो गये हैं। उपभोक्तावादी संस्कृति मानो हमारी विरासत हो गयी है। मानवीय संवेदना लुप्त होती जा रही है। हमारे मूल्यों में क्षरण हो रहा है। हिंसा, कुन्ठा, दुराचार, स्वार्थ और संकीर्णता हमें हाँक रही हैं। यानी कामिनी और कांचन के व्यामोह में पड़कर हमने अपनी मानवीय गरिमा और उत्कृष्टता खो दी है। हम शरीर से मांसल, बुद्धि से विकसित और मन से विशृंखल तथा आत्म या अध्यात्म की दृष्टि से दुर्बल और अशक्त हो गये हैं। फलतः हम समाज के लिए भार हो गये हैं।

युद्धोत्तरकालीन आधुनिक मानव की दशा-दुर्दशा की ओर संकेत करते हुए, अंतरिक्ष युग के मानव पर व्यंग करते हुए १९वीं शताब्दी के महान जर्मन दार्शनिक शॉपेनहावर ने कितना सही आकलन किया है:

All men who are secure from want and care, now that at last they have thrown off all other burdens become a burden to themselves.(The world as will and Idea, vol.1.P.404)

अर्थात् वे तमाम लोग जो अभाव और गरीबी तथा चिन्ताओं से निरापद हैं, अब चूँकि उन्होंने अन्य सारे बोझों को उतार फेंका है, स्वयं अपने लिए बोझ या भार हो गये हैं।

वस्तुतः तकनीकी विकास के द्वारा हम पूर्ण मानव नहीं बन सकते। हमारे दुःखों का अन्त केवल वैज्ञानिक विकास से नहीं हो सकता। हमें अपने आत्मतत्व का विकास करना ही होगा, अगर हम सच्चा आनन्द चाहते हैं तो। हमारे ऋषियों ने हजारों वर्ष पूर्व इस सत्य का उद्घाटन करते हुए उद्घोष किया था–

यदा चर्मवत् आकाशं
वेष्टयिष्यन्ति मानवाः।
तदा देवम् अविज्ञाय
दुःखस्यान्तो भविष्यति
(श्वेताश्वर उप.६.२०)

अर्थात मनुष्य (अपने तकनीकी ज्ञान के द्वारा) समस्त आकाश को चमड़े की छाल की भाँति भले हीं लपेट ले सकते हैं तथापि अपने भीतर उस ज्योतिर्मय परमात्मा को जाने बिना उनके दुःखों का अन्त नहीं है।

इसका यह तात्पर्य नहीं है कि हमारे लोग भौतिक विकास से मुँह मोड़कर केवल आध्यात्मिक साधना में रम जाएँ। नहीं; हम तो चाहते हैं कि हमारे बच्चे शरीर से सबल हों। वे शारीरिक सौन्दर्य एवं शक्ति के आदर्श बनें। वे मानसिक दृष्टि से पूर्ण विकसित हों। भौतिक विज्ञानों का ज्ञान-प्राचुर्य अर्जित करें तथा इस क्षेत्र में नये-नये अनुसन्धानों के द्वारा अपने वाह्य वातावरण को समृद्ध करें। परन्तु इतना ही पर्याप्त नहीं होगा।

मात्र भौतिक विज्ञान के विकास से हम अपने चरित्र में आने वाली उन विकृतियों को नहीं रोक सकते जो हमारे समाज और देश और पूरे विश्व को इन दिनों, घुन की तरह खा रही हैं। हम तो चाहते हैं कि भौतिक विज्ञान के साथ वास्तविक धर्म-विज्ञान का भी विकास हो। भौतिक उपलब्धि हमारी आन्तरिक शक्ति-सम्पदा से हमें विमुख नहीं कर सके ताकि दोनों शक्तियों के सम्मिलन से हम समाज में एक नये मानव-एक देव मानव के रूप में विचरण कर आनन्द लोक की प्रतिष्टा कर सकें।

स्वामी विवेकानन्द ने इस तथ्य को ध्यान में रखकर भगिनी निवेदिता को अपने पत्र में लिखा था–

मेरा आदर्श अवश्य ही थोड़े शब्दों में कहा जा सकता है, और वह है– मनुष्य जाति को उसके दिव्य रूप का उपदेश देना, तथा जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उसे प्रकट करने का उपाय बताना।

एक बात जो मैं सूर्य के प्रकाश की तरह स्पष्ट देखता हूँ वह यह कि अज्ञान ही दुःख का कारण है और कुछ नहीं। जगत को प्रकाश कौन देगा? भूतकाल में बलिदान का नियम था, और दुःख है कि युगों तक ऐसा ही रहेगा। संसार के वीरों को और सर्वश्रेष्ठों को 'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय' अपना बलिदान करना होगा। असीम दया और प्रेम से परिपूर्ण सैंकड़ों बुद्धों की आवश्यकता है।

संसार के धर्म प्राणहीन और तिरस्कृत हो गये हैं। जगत् को जिस वस्तु की आवश्यकता है वह है चरित्र। संसार को ऐसे लोग चाहिए जिनका जीवन स्वार्थहीन, ज्वलंत प्रेम का उदाहरण हो। वह प्रेम एक एक शब्द को बज्र के समान प्रभावशाली बना देगा।(पत्रावली,पृ.२८३,नवम् संस्करण)

वस्तुतः आध्यात्मिक अकिंचनता मनुष्य को अन्दर से, और इसके परिणामस्वरूप समाज को बाहर से विकृत कर देती है। अतः मनुष्य को आध्यात्मिक सम्पदा से सम्पन्न और समृद्ध होना ही होगा। हम कह सकते हैं कि तीसरी सहस्राब्दी के

मनुष्य को भौतिक और आध्यात्मिक दोनों ही सम्पदाओं से सम्पन्न होकर एक नये मनुष्य के रूप में ढलना होगा। ऐसा मनुष्य वास्तविक रूप में एक राजर्षि होगा। वह बाहर से भौतिकता से सम्पन्न राजा के समान होगा और भीतर से वह आध्यात्मिकता से सम्पन्न अनासक्त, लोकोपकारी, परम प्रेममय, करुणाशील एक ऋषि होगा।

तीसरी सहस्राब्दी को मनुष्य के इसी राजर्षि रूप की उपेक्षा है। ऐसा मनुष्य चाहे वह किसी दफ्तर का चपरासी हो, खेत का मजदूर हो, राजनेता हो, प्रशासकीय उच्च पदाधिकारी हो, बैंक या उद्योगों का प्रबन्धक हो अथवा गृहस्वामिनी हो- समाज के प्रति प्रतिबद्ध, समर्पित एवं संवेदनशील होगा। वह स्वार्थ से परे एक उदारचेता मनुष्य होगा। वह धन के 'मद' को, विद्या के 'मद' को तथा जन-शक्ति के 'मद' को उलटकर 'दम' से संयमित कर देगा और विश्व मंगल का आलोक-स्तम्भ तथा प्रेरणा-स्रोत हो जाएगा।

ऐसे ही मनुष्य के निर्माण की आवश्यकता पर बल देते हुए स्वामी विवेकानन्द ने उद्घोष किया था- *"मनुष्य, केवल मनुष्य भर चाहिए। बाकी सब कुछ अपने आप हो जाएगा। आवश्यकता है वीर्यवान, तेजस्वी, श्रद्धासम्पन्न और दृढ़विश्वासी निष्कपट नवयुवकों की। ऐसे सौ मिल जाएँ, तो संसार का कायाकल्प हो जाय।"*

आत्मबल - अध्यात्मबल - से विरत हो जाने के फलस्वरूप हम वास्तविक रूप से दुर्बल हो गये हैं। प्रचण्ड भौतिक-शक्ति से सम्पन्न होने पर भी, अनन्त वैज्ञानिक साधनों और निरे बौद्धिक बल के होने पर भी हम सबल नहीं, दुर्बल हैं। और यही दुर्बलता हमसे नाना प्रकार के दुष्कर्म कराती है और अन्ततः दुःख के गर्त में ढकेल देती है। दुःख हमें अशान्त कर देता है। और अशान्त को सुख कहाँ? इसी से स्वामीजी ने हमारी मदोन्मत्त आँखों में ऊँगली डाल कर कहा- *"दुःखभोग का एकमात्र कारण है दुर्बलता। हम दुःखी हो जाते हैं, क्योंकि हम दुर्बल हैं। हम झूठ बोलते हैं; चोरी करते हैं; हत्या करते हैं; तरह-तरह के अपराध करते हैं-क्यों? इसलिए कि हम दुर्बल हैं। हम मर जाते हैं, क्योंकि हम दुर्बल हैं। जहाँ दुर्बल कर देनेवाली कोई चीज नहीं; वहाँ न मृत्यु है, न दुःख।"*

मनुष्य का वास्तविक बल है इस सत्य का ज्ञान कि वह स्वयं ब्रह्म है- अनन्त शक्ति सम्पन्न, परात्पर परमात्मा। ऋषियों ने इसे ही कहा है- तत् त्वम् असि- वही तू है। आचार्य शंकर ने कहा- तू मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार नहीं है, तू शिव है। और इसी से रामकृष्ण मठ के परम अध्यक्ष स्वामी रंगनाथानन्द जी महाराज कहते हैं- *" जब भी कोई वक्ति अनुचित कार्य करने के लिए प्रेरित या प्रलोभित होता है, तब उसे 'तत् त्वम् असि' अथवा जैसा शंकराचार्य अपने प्रसिद्ध 'निर्वाण षटकम्' में गायन करते हैं-'चिदानन्द रूपः शिवोऽहम्' के महान् सत्य का स्मरण करना चाहिए। तब पुरुष और स्त्रियाँ स्पष्ट रूप में अनुभव करेंगी कि गलत कार्य करना उनके वास्तविक स्वरूप में नहीं है, कि उनके अन्तस में कुछ असीम-अनन्त, और शुद्ध तथा ज्योतिर्मय है, जिनका स्मरण कर समस्त प्रलोभनों पर विजय पायी जा सकती है।"*

यही है नये मनुष्य का सच्चा और वास्तविक रूप। इसे मैं मनुष्य का कृष्णार्जुन स्वरूप कहता हूँ। कृष्णा अर्थात मनुष्य का आध्यात्मिक,योगमय आंतरिक रूप और अर्जुन अर्थात मनुष्य का कर्मशील, भौतिक बाह्य रूप। दोनों के योग से ही वास्तविक मनुष्य का निर्माण हो सकता है। तीसरी सहस्राब्दी के मनुष्य के जीवन-रथ का सारथी श्रीकृष्ण(आंतरिक आध्यात्मिक-नैतिक शक्ति) ही होंगे और उस रथ पर सवार धनुर्धर अर्जुन(मनुष्य का वाह्य कर्म जीवन) ही होगा। जहाँ ऐसा होगा वहीं वास्तविक विजय है। गीता कहती है-

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयोभूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम।।(१८/६८)

अर्थात जहाँ योगेश्वर कृष्ण और जहाँ धनुर्धर अर्जुन हैं, वहीं पर श्री विजय विभूति और अचल नीति है। तीसरी सहस्राब्दी में हमें ऐसा ही कृष्णार्जुन-व्यक्तित्व-सम्पन्न नया मनुष्य चाहिए।

जय स्वामीजी!

जनसाधारण की उन्नति

-स्वामी विवेकानन्द

(रामकृष्ण मिशन के एक वरिष्ठ संन्यासी स्वामी निर्वेदानन्द जी ने स्वामी विवेकानन्द की अंग्रेजी ग्रंथावली में यत्र-तत्र बिखरे भारत तथा उसकी समस्याओं से सम्बन्धित विचारों का एक संकलन बनाया था। यह संकलन स्वामीजी के भारत-विषयक विचारों को समझने में काफी उपयोगी है तथा इसीलिए अतीव लोकप्रिय भी हुआ। 'विवेक-शिखा' के पाठकों के लिए भी इसका हिन्दी रूपान्तरण प्रस्तुत किया जा रहा है।-सं)

वर्तमान आवश्यकता और मेरी योजना

आज आवश्यकता है – विदेशी नियंत्रण हटाकर हमारे विविध शास्त्रों, विद्याओं का अध्ययन हो और साथ-साथ अंग्रेजी भाषा तथा पाश्चात्य विज्ञान भी सीखा जाय। हमें उद्योग-धन्धें की उन्नति के लिये तकनीकी शिक्षा भी प्राप्त करनी होगी, ताकि देश के युवक नौकरी ढूँढ़ने के बजाय अपनी जीविका के लिये समुचित धनोपार्जन भी कर सकें और दुर्दिन के लिये कुछ बचा सकें।

बच्चों के लिए उपयोगी एक पुस्तक तक तो इस देश में नहीं है। हमें कुछ ऐसी पुस्तकों का प्रकाशन करना नाहिए, जिनमें बहुत ही सरल तथा सीधी भाषा में रामायणश महाभारत तथा उपनिषदों की कथाओं का संग्रह हो और फिर ये पुस्तकें बालकों को पढ़ने के लिए दी जायँ।

जीवन मे मेरी एकमात्र महत्वाकांक्षा यही है कि मैं एक ऐसे चक्र का प्रवर्तन कर दूँ, जो उच्च एवं श्रेष्ठ विचारों को सबके द्वारों-तक पहुँचा दे और फिर पुरुष तथा महिलाएँ स्वयं ही अपने भाग्य का निर्णय कर लें। उन्हें बताया जाय कि हमारे पूर्वजों तथा अन्य देशों ने भी जीवन के महत्वपूर्ण प्रश्नों पर क्या विचार किया है! विशेषकर वे देखें कि अन्य लोग इस समय क्या कर रहे हैं और तब उन्हें अपना निर्णय लेने दो। हमें केवल रासायनिक द्रव्य एकत्र कर देने हैं और प्रकृति के नियमानुसार वे स्वयं ही अपना अवशेष आकार धारण कर लेंगे।

सबसे पहले हमें अपने देश की आध्यात्मिक और लौकिक शिक्ष को दुरुस्त करना होगा। तुम्हें इस विषय पर सोच-विचार करना होगा, इस पर तर्क-वितर्क तथा आपस में सलाह-मशवरा करना होगा, दिमाग लगाना होगा और अन्त में उसे कार्यरूप में परिणत करना होगा। जब तक तुम यह काम पूरा नहीं करते, तब तक तुम्हारे देश का उद्धार असम्भव है। अपने देश की समग्र आध्यात्मिक और लौकिक शिक्षा के प्रचार का भार हमें अपने हाथों में लेकर यथासम्भव राष्ट्रीय रीति से राष्ट्रीय सिद्धांतों के आधार पर उसका विस्तार करना होगा। हाँ, यह ठीक है कि यह एक बहुत बड़ी योजना है। मैं नहीं कह सकता कि यह कभी पूरी तौर से क्रियान्वित हो सकेगी या नहीं, पर हमें तत्काल इसे शुरू कर देना चाहिए।

सबसे पहले हमें एक मन्दिर की आवश्यकता है, क्योंकि हिन्दू लोग सभी कार्यों में पहला स्थान धर्म को देते हैं। यह मन्दिर साम्प्रदायिक भेद-भावों के परे होगा। ॐ उसका एकमात्र प्रतीक, जो कि हमारे किसी भी धर्म-सम्प्रदाय के लिए महानतम प्रतीक है। इस मन्दिर में वे ही धार्मिक तत्त्व सिखाए जाएँगे, जो सब सम्प्रदायों में समान हैं। साथ ही हर सम्प्रदायवाले को यहाँ अपने मत की शिक्षा देने का अधिकार होगा, परन्तु एक प्रतिबंध रहेगा कि वे अन्य सम्प्रदायों से झगड़ा नहीं कर सकेंगे। दूसरी बात यह है कि मन्दिर के साथ एक और संस्था हो, जिससे धार्मिक शिक्षक और प्रचारक तैयार किये जायँ और वे सभी घूम-फिरकर धर्म-प्रचार करने को भेजे जायँ। जैसे हम द्वार द्वार जाकर धर्म का प्रचार करते हैं, वैसे ही हमें लौकिक शिक्षा का प्रचार करना पड़ेगा। यह काम आसानी से हो सकता है। शिक्षकों तथा धर्म-प्रचारकों के द्वारा हमारे कार्य का विस्तार होता जाएगा और क्रमशः अन्य स्थानों में ऐसे ही मन्दिर स्थापित होंगे और इस प्रकार सम्पूर्ण भारत में यह कार्य फैल जाएगा। यही मेरी योजना है। तुमको यह बड़ी भारी प्रतीत होगी, परन्तु इसकी बहुत आवश्यकता है।

जनसाधारण की उन्नति

उनकी महत्ता

हमारी जनता सांसारिक विषयों में बहुत अज्ञानी है। हमारी जनता बहुत अच्छी है, क्योंकि यहाँ निर्धन होना अपराध नहीं है। हमारी जनता हिंसक नहीं है। अमेरिका और इंग्लैण्ड में अनेकों बार केवल अपनी वेशभूषा के कारण मैं भीड़ द्वारा घेर लिया गया हूँ। परन्तु भारत में मैंने ऐसी बात कभी नहीं सुनी कि किसी व्यक्ति की वेशभूषा के कारण भीड़ उसके पीछे पड़ गयी हो। अन्य सभी बातों में, हमारी जनता यूरोप की जनता की अपेक्षा कहीं अधिक सभ्य है।.... अनुभव के द्वारा मुझे यह शिक्षा मिली है कि हमारे देश का जन-समुदाय निर्बोध और मन्द नहीं है, वह संसार का समाचार जानने के लिए पृथ्वी के अन्य किसी स्थान के निवासी से कम उत्सुक और व्याकुल भी नहीं हैं।

वे जो लोग किसान हैं, वे कोरी, जुलाहे जो भारत के नगण्य मनुष्य हैं, विजाति-विजित स्वजाति-निन्दित छोटी छोटी जातियाँ हैं, वे ही लगातार चुपचाप काम करती जा रही हैं और अपने परिश्रम का फल भी नहीं पा रही हैं।...ये जो किसान, मजदूर, मोची, मेहतर आदि हैं, उनकी कर्मशीलता और आत्मनिष्ठा तुममें से कइयों से कहीं अधिक है। ये लोग चिरकाल से चुपचाप काम करते जा रहे हैं, देश का धन-धान्य उत्पन्न कर रहे हैं, पर अपने मुँह से शिकायत नहीं करते।

माना कि उन्होंने तुम लोगों की तरह पुस्तकें नहीं पढ़ी हैं, तुम्हारी तरह कोट-कमीज पहन कर सभ्य बनना उन्होंने नहीं सीखा, पर इससे क्या? वास्तव में वे ही राष्ट्र के रीढ़ हैं। यदि ये निम्न श्रेणियों के लोग अपना अपना काम बन्द करना बन्द कर दें, तो तुम लोगों को अन्न-वस्त्र मिलना कठिन हो जाय! कलकत्ते में यदि मेहतर लोग एक दिन के काम करना बन्द कर दें, तो संक्रामक रोगों से शहर बर्बाद हो जाय! श्रमिकों के काम बन्द करने पर तुम्हें अन्न वस्त्र नहीं मिल सकता। इन्हें ही तुम लोग नीच समझ रहे हो और अपने को शिक्षित मानकर अभिमान कर रहे हो।

हे भारत के श्रमजीवियों, तुम्हारे नीरव, सदा ही निन्दित हुए परिश्रम के फलस्वरूप बेबोलोनए ईरान, सिकन्दरिया, यूनान, रोम, वेनिस, जिनेवा, बगदाद, समरकन्द, स्पेन, पुर्तगाल, फ्रांसीसी, डेनमार्क, डच और अंग्रेजों का क्रमशः आधिपत्य हुआ और उनको ऐश्वर्य मिला। और तुम? कौन सोचता है इस बात को!...जिनके रुधिर-स्राव से मनुष्य जाति की यह जो कुछ उन्नति हुई है, उनके गुणगान कौन करता है? लोकजयी, धर्मवीर, रणवीर, कार्यवीर,सबकी आँखों पर, सबके पूज्य हैं; परन्तु जहाँ कोई नहीं देखता, जहाँ कोई एक बार 'वाह' 'वाह' भी नहीं करता, जहाँ सब लोग घृणा करते हैं, वहाँ वास करती है अपार सहिष्णुता, अनन्य प्रीति और निर्भीक कार्यकारिता; हमारे गरीब, घर-द्वार पर दिन-रात मुँह बन्द करके कर्म करते जा रहे हैं, उसमें क्या वीरत्व है? बड़ा काम आने पर बहुतेरे वीर हो जाते हैं, दस हजार आदमियों की वाहवाही के सामने कापुरुष भी सहज ही में प्राण दे देता है; घोर स्वार्थपर भी निष्काम हो जाता है; परन्तु अत्यन्त छोटे-से काम में भी सबके अज्ञात भाव से जो वैसी ही निःस्वार्थता, कर्तव्य-परायणता दिखाते हैं, वे ही धन्य हैं – वे तुम लोग हो-भारत के हमेशा के पददलित श्रमजीवियों!-तुम लोगों को मैं प्रणाम करता हूँ।

उनकी वर्तमान अवस्था और इसका कारण

समाज को नेतृत्व चाहे विद्या-बल से प्राप्त हुआ हो, चाहे बाहु-बल से अथवा धन-बल से, पर उस शक्ति का आधार प्रजा ही है। शासक-समाज जितना ही इस शक्ति के आधार से अलग रहेगा, वह उतना ही दुर्बल होगा। परन्तु माया की ऐसी विचित्र लीला है कि जिनसे परोक्ष या अप्रत्यक्ष रीति से, छल-बल-कौशल के प्रयोग से अथवा प्रतिग्रह द्वारा शक्ति प्राप्त की जाती है, उनकी ही गणना शासकों के निकट शीघ्र ही समाप्त हो जाती है।

हमारे इस देश में, इस वेदान्त की जन्मभूमि में सैकड़ों वर्षों से हमारे जनसाधारण को सम्मोहित करके इस तरह की हीन अवस्था में डाल दिया गया है। उनके स्पर्श में अपवित्रता समायी है, उनके साथ बैठने में छूत लग जाती है। उनसे कहा जा रहा है

निराशा के अन्धकार में तुम्हारा जन्म हुआ है, तुम सदा इसी अन्धेरे में पड़े रहो। और इसका परिणाम यह है कि वे लगातार डूबते चले जा रहे हैं। अन्त में मनुष्य जितनी निकृष्ट अवस्था तक पहुँच सकता है, वहाँ तक वे पहुँच चुके हैं। क्योंकि ऐसा देश कहाँ हैं, जहाँ मनुष्य को जानवरों के साथ एक ही जगह पर सोना पड़ता हो? इसके लिए किसी दूसरे पर दोषारोपण न करो - अज्ञ लोग जो भूल किया करते हैं, वही भूल तुम मत करो। कार्य-कारण दोनों यहीं विद्यमान हैं। दोष वास्तव में हमारा ही है। हिम्मत बाँध कर खड़े हो जाओ - सारा दोष अपने ही सर पर ले लो। दूसरे पर दोष मत मढ़ो। तुम जो कष्ट भोग रहे हो, उसके एकमात्र कारण तुम्हीं हो।

हमारे अभिजात पूर्वज आम जनता को जमाने से पैरों तले कुचलते रहे। इसके फलस्वरूप वे एकदम असहाय हो गये। यहाँ तक कि वे अपने आपको मनुष्य मानना भी भूल गये। सदियों तक वे धनी-मानियों की ओझा सिर-आँखों पर रखकर केवल लकड़ी काटते और पानी भरते रहे हैं।...भारत के गरीबों, पतितों और पापियों का कोई साथी नहीं, कोई सहायक नहीं- वे कितना भी कोशिश क्यों न करें, उनकी उन्नति का कोई उपाय नहीं। वे दिन-पर-दिन डूबते जा रहे हैं। क्रूर समाज उन पर जो लगातार चोटें कर रहा है, उसका अनुभव तो वे खूब कर रहे हैं, पर वे जानते नहीं कि वे चोटें कहाँ से आ रही हैं। वे भूल गये हैं कि वे भी मनुष्य हैं। इसका फल है गुलामी।

चिन्तनशील लोग पिछले कुछ वर्षों से समाज की यह दुर्दशा समझ रहे हैं, परन्तु दुर्भाग्यवश, वे इसका दोष हिन्दू धर्म के मत्थे मढ़ रहे हैं। वे सोचते हैं कि जगत के इस सर्वश्रेष्ठ धर्म का नाश ही समाज की उन्नति का एकमात्र उपाय है। सुनो मित्र, प्रभु की कृपा से मुझे इसका रहस्य मालूम हो गया है। दोष धर्म का नहीं है। बल्कि इसके विपरीत, तुम्हारा धर्म तो तुम्हें यही सिखाता है कि संसार भर के प्राणी तुम्हारी आत्मा के विविध रूप हैं। समाज की इस हीनावस्था का कारण है, इस तत्त्व को व्यावहारिक आचरण में लाने का अभाव, सहानुभूति का अभाव- हृदय का अभाव। भगवान एक बार फिर तुम्हारे बीच बुद्धरूप में आये और तुम्हें गरीबों, दुखियों और पापियों के लिए आँसू बहाना और उनके प्रति सहानुभूति करना सिखाया, परन्तु तुमने उनकी बात पर ध्यान नहीं दिया। तुम्हारे पुरोहितों ने यह भयानक किस्सा गढ़ा कि भगवान भ्रान्त मत का प्रचार कर असुरों को मोहित करने आये थे। सच है; पर असुर हैं हमीं लोग, न कि वे, जिन्होंने विश्वास किया। और जिस तरह यहूदी लोग प्रभु ईशा का तिरस्कार कर आज सारी दुनिया में सबके द्वारा सताये और दुत्कारे जाकर भीख माँगते हुए फिर रहे हैं, उसी तरह तुम लोग भी, जो भी जाति तुम राज्य करना चाहती है, उसी के गुलाम बन रहे हो। हाय अत्याचारियो! तुम जानते नहीं कि अत्याचार और गुलामी मानो एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। गुलाम और अत्याचार पर्यावाची हैं।

पृथ्वी पर ऐसा कोई धर्म नहीं है, जो हिन्दू धर्म के समान इतने उच्च स्वर से मानवता के गौरव का उपदेश करता हो, और पृथ्वी पर ऐसा कोई धर्म नहीं है, जो हिन्दू धर्म के समान गरीबों और नीच जातियों का गला ऐसी क्रूरता से घोटता हो। प्रभु ने मुझे दिखा दिया है कि इसमें धर्म का कोई दोष नहीं है, वरन् दोष उनका है, जो ढोंगी और दम्भी हैं, जो 'पारमार्थिक' और 'व्यावहारिक' सिद्धांतों के रूप में अनेक प्रकार के अस्त्रों का निर्माण करते हैं।... भंगियों और चाण्डालों को उनकी वर्तमान दशा में किसने पहुँचाया? हमारे आचरण की हृदयहीनता और साथ ही आश्चर्यजनक अद्वैतवाद के उपदेश ने- क्या यह कटे पर नमक छिड़कने जैसा नहीं है?.... तुम्हारे पास संसार का महानतम धर्म है और तुम जनसमुदाय को सारहीन और निरर्थक बातों पर पालते हो। तुम्हारे पास चिरन्तन बहता हुआ स्रोत है और तुम उन्हें गन्दी नाली का पानी पिलाते हो। तुम्हारा ग्रेजुएट एक नीची जाति के व्यक्ति का स्पर्श नहीं करेगा, पर वह अपनी शिक्षा के लिए उससे रूपये खींचने को तैयार है।

इसका समाधान और हमारी जिम्मेदारी

सर्वदा जीवन-संग्राम में व्यस्त रहने के कारण निम्न श्रेणी के लोगों में अभी तक ज्ञान का विकास नहीं हुआ। ये लोग अभी तक मानव-बुद्धि द्वारा

परिचालित यन्त्र की तरह एक ही भाव से काम करते आये हैं, और बुद्धिमान चतुर व्यक्ति इनके परिश्रम तथा कार्य का सार निचोड़ लेते रहे हैं। सभी देशों में इसी प्रकार हुआ है। परन्तु अब वे दिन नहीं रहे। निम्न श्रेणी के लोग धीरे धीरे यह बात समझ रहे हैं और इसके विरुद्ध सब सम्मिलित रूप से खड़े होकर अपने समुचित अधिकार प्राप्त करने के लिए दृढ़प्रतिज्ञ हो रहे हैं। यूरोप और अमेरिका में निम्न जातीय लोगों ने जाग्रत होकर इस दिशा में प्रयत्न भी आरम्भ कर दिया है और आज भारत में भी इसके लक्षण दृष्टिगोचर हो रहे हैं। निम्न श्रेणी के व्यक्तियों द्वारा आजकल जो इतनी हड़तालें हो रही हैं, वे इनकी इसी जागृति का प्रमाण है। अब हजार कोशिश करके भी उच्च जाति के लोग निम्न श्रेणियों को अधिक दबाकर नहीं रख सकेंगे। अब निम्न श्रेणियों के न्यायसंगत अधिकार की प्राप्ति में सहायता करने में ही उच्च श्रेणियों का भला है।

इस देश (अमेरिका) में हर व्यक्ति के लिए आशा है, भरोसा है ओर सुविधाएँ हैं। आज जो गरीब है, वह कल धनी हो सकता है, विद्वान और लोकमान्य भी हो सकता है। यहाँ सभी लोग गरीब की सहायता करने में व्यस्त रहते हैं। भारत में यह रोना-धोना मचा है कि हम बड़े गरीब हैं, परन्तु वहाँ गरीबों की सहायता के लिए कितनी दानशील संस्थाएँ हैं? भारत के करोड़ों अनाथों के लिए कितने लोग रोते हैं? हम क्या मनुष्य हैं? हम उनकी उन्नति के लिए क्या कर रहे हैं? उनके मुख में एक कौर अन्न देने के लिए क्या करते हैं? हम उन्हें छूते भी नहीं और 'दुर-दुर' कहकर भगा देते हैं। क्या हम मनुष्य हैं?

यूरोप के बहुतेरे नगरों में घूमते हुए और वहाँ के गरीबों के भी अमन-चैन और शिक्षा को देखकर मुझे अपने गरीब देशवासियों की याद आती थी और मैं आँसू बहाता था। यह अंतर क्यों हुआ? उत्तर मिला- शिक्षा से। शिक्षा और आत्मविश्वास से उनका अन्तर्निहित ब्रह्मभाव जाग गया है, जब कि हमारा ब्रह्मभाव क्रमशः निद्रित - संकुचित होता जा रहा है।

न्यूयार्क में मैं आइरिश उपनिवेशवासी को आते देखा करता था- पददलित, कान्तिहीन, निःसम्बल अति दरिद्र और महामूर्ख, साथ में एक लाठी और उसके सिरे पर लटकती हुई फटे कपड़ों की एक छोटी सी गठरी। उसकी चाल में भय और आँखों में शंका होती थी। छः महीने के बाद यही दृश्य बिल्कुल बदल जाता। अब वह तन कर चलता था, उसका वेश बदल गया था, उसकी चाल और चितवन में पहले का वह डर दिखायी नहीं पड़ता। ऐसा क्यों हुआ? हमारा वेदान्त कहता है कि वह आइरिश अपने देश में चारों तरफ घृणा से घिरा हुआ रहता था-सारी प्रकृति एक स्वर से उससे कह रही थी कि 'बच्चू' तेरे लिए कोई आशा नहीं है; आजन्म सुनते सुनते बच्चू को उसी का विश्वास हो गया। बच्चू ने अपने को सम्मोहित कर डाला कि वह अति नीच है। इससे उसका ब्रह्मभाव संकुचित हो गया। परन्तु जब उसने अमेरिका में पैर रखा तो चारों ओर से ध्वनि उठी,"बच्चू, तू भी वही आदमी है, जो हम लोग हैं। आदमियों ने ही सब काम किये हैं; तेरे और मेरे समान आदमी ही सब कुछ कर सकते हैं। धीरज धर।" बच्चू ने सिर उठाया और देखा कि बात तो ठीक ही है- बस, उसके अन्दर सोया हुआ ब्रह्म जाग उठा; मानो स्वयं प्रकृति ने ही कहा हो,"उठो, जागो और जब तक मंजिल पर न पहुँच जाओ, रुको मत।"(कठो: १.३.४)

वर्तमान सभ्यता - जैसे कि पश्चिमी देशों की है - और प्राचीन सभ्यता- जैसे कि भारत, मिश्र और रोम आदि देशों की रही है- इनके बीच अंतर उसी दिन शुरू हुआ जब से शिक्षा, सभ्यता आदि उच्च जातियों से धीरे धीरे नीच जातियों में फैलने लगी। मैं प्रत्यक्ष देखता हूँ कि जिस जाति की जनता में विद्या-बुद्धि का जितना ही अधिक प्रचार है, वह जाति उतनी ही उन्नत है। भारत के सत्यानाश का मुख्य कारण यही है कि राजशासन और दम्भ के बल पर देश की सम्पूर्ण विद्या-बुद्धि मुट्ठी भर लोगों के एकाधिकार में रखी गयी है। यदि हमें फिर से उन्नति करनी है तो हमको उसी मार्ग पर चलना होगा, अर्थात जनता में विद्या का प्रसार करना होगा।...अब उपाय है- शिक्षा का प्रसार।...मेरा विचार है कि भारत और भारत के बाहर मनुष्य जाति में जिन उदार भावों का विकास हुआ है, उनकी शिक्षा गरीब-से-गरीब और हीन-से-हीन को

दी जाय और फिर उन्हें स्वयं विचार करने का अवसर दिया जाय।

उन्हें कौन प्रकाश देगा, कौन उन्हें द्वार द्वार शिक्षा देने के लिए घूमेगा? ये ही तुम्हारे ईश्वर हैं, ये ही तुम्हारे इष्ट बनें। निरन्तर इन्हीं के लिए सोचो, इन्हीं के लिए काम करो, इन्हीं के लिए निरन्तर प्रार्थना करो- प्रभु तुम्हें मार्ग दिखायेंगे। उसी को मैं महात्मा कहता हूँ, जिसका हृदय गरीबों के लिए रोता है, अन्यथा वह तो दुरात्मा है। आओ, हम लोग अपनी इच्छा-शक्ति को एक साथ मिलाकर उनकी भलाई के लिए निरन्तर प्रार्थना में लगायें। हम अनजान, बिना सहानुभूति के, बिना मातमपुर्सी के, बिना सफल हुए मर जाएँगे, परन्तु हमारा एक भी विचार नष्ट नहीं होगा। वह कभी-न-कभी फल अवश्य लायेगा। मेरा हृदय भावों से इतना गद्गद् हो गया है कि मैं उसे व्यक्त नहीं कर सकता; तुम्हें यह विदित है, तुम उसकी कल्पना कर सकते हो। जब तक करोड़ों भूखे और अशिक्षित रहेंगे, तब तक मैं प्रत्येक उस आदमी को विश्वासघतक समझूँगा, जो उनके खर्च पर शिक्षित हुआ है, परन्तु जो उन पर तनिक भी ध्यान नहीं देता! वे लोग जिन्होंने गरीबों को कुचलकर धन पैदा किया है और अब ठाट-आअ से अकड़कर चलते हैं, यदि उन बीस करोड़ देशवासियों के लिए, जो इस समय भूखे और असभ्य बने हुए हैं, कुछ नहीं करते, तो वे घृणा के पात्र हैं।

उन्हें हमें लोकपयोगी शिक्षा देनी होगी। हमें अपने पूर्वजो द्वारा निश्चित की हुई योजना के अनुसार चलना होगा, अर्थात सब आदर्शों को धीरे धीरे जनता में पहुँचाना होगा। उन्हें धीरे धीरे ऊपर उठाओ, अपने बराबर बनाओ। उन्हें लौकिक ज्ञान भी धर्म के द्वारा प्रदान करो।

अब तुम लोगों का काम है प्रान्त प्रान्त में, गाँव गाँव में जाकर देश के लोगों को समझा देना कि अब आलस्य के साथ बैठे रहने से काम नहीं चलेगा। शिक्ष-विहीन धर्म-विहीन वर्तमान अवनति की बात उन्हें समझाकर कहो - 'भाई, अब उठो, जागो, और कितने दिन सोओगे?' और शास्त्र के महान् सत्यों को सरल करके उन्हें जाकर समझा दो। इतने दिन इस देश का ब्राह्मण धर्म पर एकाधिकार किये बैठा [रहा;] काल-स्रोत में वह जब और अधिक टिक नहीं स[का,] तो अब जाकर उन्हें समझा दो कि ब्राह्मणों की [भाँति] उनका भी धर्म में समान अधिकार है। चाण्डाल [तक] को इस अग्निमंत्र में दीक्षित करो और सरल भाषा [में] उन्हें व्यापार, वाणिज्य, कृषि आदि गृहस्थ-जीवन [के] अत्यावश्यक विषयों का उपदेश दो।

एक केन्द्रीय महाविद्यालय खोलकर साधा[रण] लोगों की उन्नति के विचार का प्रचार करने में [कोई] हर्ज नहीं। इस महाविद्यालय के शिक्षित प्रचारकों [द्वारा] गरीब की कुटियों में जाकर उन्हें शिक्षा और धर्म [का] प्रचार करना होगा। ...यदि कुछ निःस्वार्थ परोपक[ारी] संन्यासी गाँव गाँव में जाकर विद्यादान करते फिरें [और] भाँति भाँति के उपायों से मानचित्र, कैमरा, ग्लो[ब] आदि के सहारे चाण्डाल तक सबकी उन्नति के लि[ए] घूमते फिरें, तो क्या समय पर इससे मंगल नहीं हो[गा?] ये सभी योजनाएँ मैं इतने छोटे पत्र में नहीं लि[ख] सकता। बात यह है कि 'यदि पहाड़ मुहम्मद के पा[स] न आये, तो मुहम्मद ही पहाड़ के पास जायेगा' (अर्थात यदि गरीब के लड़के विद्यालय में न आ स[कें] तो उनके घर पर जाकर उन्हें शिक्षा देनी होगी) गरीब इतने बेहाल हैं कि वे स्कूलो और पाठशाला[ओं] में नहीं आ सकते।

याद रखो कि हमारा राष्ट्र झोपड़ी में बसा [है,] परन्तु शोक! उन लोगों के लिए कभी किसी ने कु[छ] किया नहीं। हमारे आधुनिक सुधारक विधवाओं [के] पुनर्विवाह कराने में बड़े व्यस्त हैं। निश्चय ही मु[झे] प्रत्येक सुधार से सहानुभूति है; परन्तु राष्ट्र की भा[वी] उन्नति उसकी विधवाओं को मिले पतियों की संख[्या] पर नहीं, बल्कि 'आम जनता की हालत' पर नि[र्भर] है। क्या तुम जनता की उन्नति कर सकते हो? उन[की] स्वाभाविक आध्यात्मिक वृत्ति को बनाए रखकर, क[्या] तुम उनका खोया हुआ व्यक्तित्व लौटा सकते हो? क[्या] समता, स्वतंत्रता; कार्य-कौशल तथा पौरुष में [तुम] पाश्चात्यों के भी गुरु बन सकते हो? क्या तुम उ[स] के साथ साथ स्वाभाविक आध्यात्मिक अन्तःप्रेरणा त[था] अध्यात्म-साधनाओं में एक कट्टर सनातनी हिन्दू [हो] सकते हो? यह काम करना है और हम इसे करेंगे ही

रामकृष्ण—विवेकानन्द के सन्देश और युवजन

- श्रीमत् स्वामी रंगनाथानन्द
अध्यक्ष, रामकृष्ण मठ एवं मिशन, बेलूड़ मठ

{रामकृष्ण मिशन नई दिल्ली द्वारा ६,१०,११ सितम्बर, १९८२ ई० को आयोजित रामकृष्ण-विवेकानन्द युवा सम्मेलन में रामकृष्ण मिशन के महा मनीषी प्रवक्ता श्रीमत् स्वामी रंगानाथानन्द जी महराज द्वारा प्रदत्त उद्घाटन भाषण का टेप रिकार्ड किया गया था। उसी के आधार पर जो निबन्ध तैयार हुआ उसे "Eternal Values for a Changing Society, Vol. में Great spiritual Teachers' शीर्षक से संकलित किया गया। प्रस्तुत निबन्ध उसी का हिन्दी अनुवाद है जिसे लेखक द्वारा दी गयी अनुमति से प्रकाशित किया जा रहा है। अनुवादक हैं डॉ० केदारनाथ लाभ -सं०}

प्रस्तावना

श्री रामकृष्ण और स्वामी विवेकानन्द से प्ररित युवा सम्मेलन में भाग लेने के अनुपम उद्देश्य से आपलोग यहाँ एकत्र हुए हैं। रामकृष्ण मिशन के दिल्ली केन्द्र द्वारा इसमें भाग लेने तथा असका उद्घाटन करने के आमंत्रण पर मैं हैंदराबाद से सीधे यहाँ आया हूँ। श्री रामकृष्ण एवं स्वामी विवेकानन्द के जीवन तथा संदेश की हमारे युवजनों के लिए स्पष्ट प्रासंगिकता है। हमारे अधिकांश युवक यह नहीं जानते कि वह प्रसांगिकता क्या है; किन्तु जब उन्हें इस सम्बंध में सुनने का अवसर प्राप्त होता है, वे पूरे अन्तःकरण से अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं। इस विषय में अपने युवजनों से मैं कभी कभी पत्र प्राप्त करता हूँ। विवेकानन्द के संदेश पर व्याख्यान सुनने के बाद वे लिखते हैं: 'हमलोग इसके पूर्व यह नहीं जानते थे कि उनका ऐसा गम्भीर संदेश है। यह कितना मनोरम-मोहक है, कितना तर्कसंगत और व्यवहारिक है!' ऐसी अभ्युक्तियाँ सिद्ध करती हैं कि आगत दशकों में जब इस संदेश से हमारे अधिक से अधिक लोग अवगत होंगे, तब यह संदेश हमारे युवाओं के जीवन और चरित्र का स्वस्थ रूप से गठन करने मे महत भूमिका का निर्वाह करने वाला होगा। यह सम्मेलन इस दिशा में एक लघु प्रयास है और मैं इसमें भाग लेने तथा इसका उद्घाटन करने में प्रसन्नता का अनुभव करता हूँ।

स्वामी विवेकानन्द का अपने देश के युवाओं में भारी विश्वास था। सामान्यतः हमारे अधिकांश युवकों में आदर्श का भाव है और अब, उनमें प्रचंड ऊर्जा और शिक्षा भी है। स्वामीजी ने अनुभव किया था कि वे नवीन भारत के निर्माण में सक्षम हो सकेंगे और वे (स्वामीजी) प्रायः 'मनुष्य-निर्माणकारी तथा राष्ट्र-निर्माणकारी' शव्दों का प्रयोग किया करते थे। कुछ वर्ष पूर्व(सन् १९८० ई० में), मुश्किल से ५० या ६० पृष्ठों की, किन्तु प्रेरणादायक विचारों से परिपूर्ण 'Rebuild India' (नया भारत गढ़ो) नामक एक लघु पुस्तिका रामकृष्ण मिशन के द्वारा प्रकाशित की गयी थी। इसकी लाखों प्रतियाँ सारे भारतवर्ष में वेची गयीं; और भारत के पुनर्निर्माण का कार्य का विशेष अधिकार औश्र दायित्व हमारे युवजनों का है।

२. युवजन और भारत का पुनर्निर्माण

तुम में से अधिकांश लोग, प्रायः ५०० से ६००, सारी दिल्ली से प्रतिनिधि के रूप में एकत्रित हुए हो, और तुम सब ३० वर्ष से कम वय के युवजन हो। कल्पना करो कि इसका क्या अर्थ है, जब तुम यह अनुभव करते हो कि आगत ५० वर्षों में, तुम्हें अपने भारतवर्ष में रहने और उसके पुनर्निर्माण के लिए इतना प्रचुर अवसर प्राप्त हुआ है। एकबार जब तुम अपने मन को इस उद्देश्य के लिए नियोजित करते हो, एक प्रश्न उठता है....भारत के पुनर्निर्माण के लिए कौन सी योजनाएँ हैं? जब तुम एक घर बनाना चाहते हो, तब तुम एक नक्शे की आवश्यकता का अनुभव करते हो। तुम किसी शिल्पी के समीप जाते हो जो इस विषय में पूर्ण जानकारी रखता है। अतएव, जब तुम एक नवयुवक के रूप में भारत का पुनर्निर्माण करने की शुरुआत करते हो, तब निश्चय ही तुम्हें यह प्रश्न पूछना चाहिए : हमें कैसा भारत चाहिए? उस भवन का शिल्प किस प्रकार का है? और अपने देश के सन्दर्भ में यह वहुत महत्वपूर्ण प्रश्न है, क्योंकि कुछ अन्य आधुनिक देशों की भाँति

हमलोग किसी प्रस्थान रेखा से आरम्भ नहीं कर रहे हैं।

उदाहरणार्थ सत्रहवीं और अट्ठारहवीं शताब्दी में, अमेरिका में पूछने को ऐसे प्रश्न नहीं थे। वहाँ के लोग विरलता से बसी आबादी वाले महाद्वीप में सर्वथा एक नयी संस्कृति, एक नयी समान सभ्यता का निर्माण कर रहे थे। किन्तु भारत बिल्कुल विभिन्न देश है। हमारे पास विगत पाँच हजार वर्षों का इतिहास एवं विभिन्न प्रजातियों की विशाल आबादी है। इतिहास की एक [illegible] अवधि, जिसका बहुलांश अत्यंत गौरवशाली [illegible] है, हमारे पीछे है। और हमारे इस लम्बे इतिहास ने इस दीर्घ अवधि में, प्रायः समस्त समकालीन सभ्यताओं को प्रभावित किया है। हमलोगों ने समग्र मानवता की समान विरासत-पदार्थ विज्ञान, राजनैतिक आर्थिक चिन्तन, कला तथा सबसे बढ़कर विशुद्ध धर्म एवं दर्शन के क्षेत्रों में अपने हिस्से का दान किया है। हमारे विगत इतिहास की ये महत्तम देन है, और आधुनिक काल में भी भारत ने संतों, चिंतकों और नेतृत्व करनेवालों की एक पूरी मंडली ही उत्पन्न की है। और हमारे युवकों को भावी भारत के निर्माण में अपने प्राचीन एवं अर्वाचीन महान पूर्वजों के गरिमामय कार्यो को ध्यान में अवश्य रखना चाहिए। हमें उनके कार्यो को निरन्तर बनाये रखना है तथा एक महत्तर एवं स्वस्थतर भारत का निर्माण करना है। स्वभावतः, ऐसा कार्य केवल राष्ट्र का निर्माण करना ही नहीं, बल्कि राष्ट्र का पुनर्निर्माण हो सकता है। और इस प्रक्रिया में, उस विरासत के कुछ हिस्सों को जो अप्रासंगिक, निरर्थक तथा हमारी प्रगति के बाधक हो गये हैं, काटना पड़ सकता है। इसे करने के लिए, हमें स्पष्ट चिन्तन, विवेकपूर्ण निर्णय तथा साहस करने की जरूरत है, लेकिन ऐसा करने के समय, हमें अपनी राष्ट्रीय संस्कृति एवं जीवन के मूलभूत तत्त्वों को सुरक्षित एवं सुदृढ़ रखना है; और हमलोगों को भारतीय एवं पश्चिमी दोनों क्षेत्रों की वर्तमानकालीन उपलब्धियों का लाभ उठाना है, तथा इनके उन तत्त्वों का समन्वय करना है जो स्वस्थ और सबल है, तभी हमलोग इन सबके आलोक में भारत का पुनर्निर्माण कर सकते हैं।

इस विषय में हमें मार्ग-दर्शन की आवश्य[कता] है। ऐसा नक्शा तैयार करने के लिए, जिसे ह[म] युवजन कुशलता, उर्जा और समर्पण के भाव से [...] में परिणत कर सकें, ऐतिहासिक दृष्टि एवं परि[...] से सम्पन्न एक महान् दूरदर्शी शिल्पी की सहा[यता] लेने की हमें आवश्यकता है। वह शिल्पी स्[वामी] विवेकानन्द है। स्वामी विवेकानन्द इस विषय में अ[पने] **'वेदान्त का उद्देश्य'**(विवेकानन्द साहित्य, पं[चम] खण्ड,पृ० ६२, १९७३ संस्करण) नामक व्याख्यान [में] जो कहते हैं उसे कृपापूर्वक सुनो :

'मैं किसी क्षणिक समाज-सुधार का प्रचा[र] नहीं हूँ। मैं समाज के दोषों का सुधार करने की चे[ष्टा] नहीं कर रहा हूँ। मैं तुमसे केवल इतना ही कहता [हूँ] कि तुम आगे बढ़ो और हमारे पूर्वपुरुष समग्र मा[नव] जाति की उन्नति के लिए जो सर्वांग सुन्दर प्रण[ाली] बता गये हैं, उसी का अवलम्बन कर उनके उद्दे[श्य] को सम्पूर्ण रूप से कार्य में परिणत करो। तुमसे [मेरा] कहना यही है कि तुम मानव के एकत्व और उ[सके] नैसर्गिक ईश्वरत्व-भाव-रूपी वेदान्ती आदर्श [के] अधिकाधिक समीप पहुँचते जाओ।'

२. आधुनिक युग में स्वरूप-गठन में श्रीरामकृ[ष्ण] की भूमिका

जब तुम इस पद्धति से सोचोगे और प्र[यास] करोगे तभी तुम रामकृष्ण और विवेकानन्द के जीव[न] और संदेश के महत्व को जान सकोगे। भारत औ[र] पाश्चात्य दानों जगतों के महान आचार्यों, महा[न] चिन्तकों और श्रेष्ठ लेखकों ने आधुनिक युग के पुनर्गठन में रामकृष्ण और विवेकानन्द की देन [की] मुक्त कंठ से घोषणा की हैं। हमें इन सबको अवश्य [ही] समझना चाहिए। और इन महान् आधुनिक चिन्त[कों] की कुछ अभ्युक्तियाँ हमलोगों के देश और आधुनि[क] युग के पुनर्गठन में इसकी भूमिका के प्रति भी महा[न] प्रशस्तियाँ हैं। तुमलोग गाँधीजी, नेहरूजी औ[र] रामकृष्ण-विवेकानन्द के प्रति कितनी ही प्रशस्ति[याँ]

पढ़ते हो! वे स्वामी श्री रामकृष्ण विवेकानन्द से न केवल भारत बल्कि सम्पूर्ण आधुनिक सभ्यता को विचारों और आदर्शों और मानव के विकास और पूर्णता के लिए प्रेरणा के रूप में बहुत कुछ प्राप्त करना है।

महान् अंग्रेज इतिहासवेत्ता, स्व० ऑर्नल्ड टोयनबी, कुछ वर्ष पहले, १९५० के दशक में, दिल्ली आये थे और मेरे आमंत्रण पर मेरी अध्यक्षता में इसी ठसाठस भरे सभामंडल में उन्होंने भाषण दिया था। उस समय उन्होंने मुझसे कृपापूर्वक The Gospel of Sri Ramakrishna (श्रीरामकृष्ण वचनामृत) नामक महत्तम ग्रंथ की एक प्रति उपहार स्वरूप स्वीकार की थी। कुछ वर्षों बाद, १९६४ ई० में रामकृष्ण वेदान्त केन्द्र, लंदन के तत्कालीन प्रधान दिवंगत स्वामी घनानन्द द्वारा लिखित और उसी केन्द्र द्वारा प्रकाशित ग्रंथ The Ramakrishna : His Unique Message(श्रीरामकृष्ण के अद्भुत संदेश) की प्रस्तावना में उन्होंने भारत और श्रीरामकृष्ण पर एक सुन्दर अभ्युक्ति प्रदान की थी; और राष्ट्र के रूप में हमलोग उस अभ्युक्ति पर न्यायोचित रूप से गर्व कर सकते हैं। किन्तु इसके योग्य होने के लिए यह अभ्युक्ति हम पर कितना गम्भीर दायित्व सौंपती है! श्रीरामकृष्ण पर विचार करते हुए तथा आधुनिक मनुष्य के आध्यात्मिक जीवन को सुदृढ़ करने और इस आधुनिक विश्व में विभिन्न धर्मों में आदर्श तालमेल के विषय में श्रीरामकृष्ण के जीवंत उदाहरण एवं उपदेशों के प्रसार एवं क्रियान्वयन के सम्बंध में विवेचन करते हुए टोयनबी कहते हैं(वही,१९७२ संस्करण) :'

'आचरणों में अभिव्यक्त श्रीरामकृष्ण का संदेश अद्भुत था। यह संदेश स्वयं हिन्दुत्व का शाश्वत संदेश था।....धर्म मात्र अध्ययन का विषय नहीं है; यह कुछ ऐसा है जिसे अनुभव किया और जिया जा सकता है, और यही वह क्षेत्र है जिसमें श्रीरामकृष्ण ने अपनी विलक्षणता प्रकट की। उन्होंने भारतीय धर्म और दर्शन के लगभग प्रत्येक प्रकार की यथाक्रम से साधना की, और उन्होंने इस्लाम तथा ईसाई धर्मों की भी साधना उनके धार्मिक क्रियाकलाप और अनुभव, वस्तुतः इस सीमा तक विस्तृत-व्यापक थे जो भारत या अन्यत्र कहीं, इसके पूर्व के किसी भी धर्मात्मा द्वारा शायद उपलब्ध नहीं किये गये थे। श्रीरामकृष्ण ने उस काल और देश में अपने को अवतरित किया और अपना संदेश दिया जिस काल और देश में उनकी और उनके संदेश की आवश्यकता थी। यह संदेश शायद ही किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा दिया जा सकता था जिसका हिन्दू धार्मिक परम्परा में पालन-पोषण और शिक्षण नहीं हुआ हो। श्रीरामकृष्ण का जन्म बंगाल में १८३६ ई० में हुआ था। उनका जन्म उस विश्व में हुआ था, जो पहली बार अक्षरशः विश्व व्यापी रूप में एकीकृत हुआ था। आज, हमलोग विश्व इतिहास के इस संक्रांतिकाल में अब भी रह रहे हैं; *किन्तु अब यह स्वयं स्पष्ट होने लगा है कि वह अध्याय जिसका पश्चिमी प्रारम्भ हुआ था, उसका यदि मानवजाति के आत्म-संहार में उपसंहार नहीं हुआ तो, भारतीय उपसंहार होगा।*

मानव इतिहास के इस महान खतरे की घड़ी में, मानवजाति की मुक्ति का एक मात्र मार्ग भारतीय है। सम्राट अशोक और महात्मा गाँधी के अहिंसा के सिद्धांत और श्रीरामकृष्ण के धर्मों की एकता के साक्ष्य में ही वह रुख और भाव हमलोग पाते हैं जो मानवजाति को एक परिवार के रूप में साथ-साथ बढ़ने को सम्भव बना सकते हैं-और, इस आणविक युग में, अपना विनाश करने से बचने के लिए एकमात्र यही विकल्प है।' (चिह्नित पंक्तियाँ टोयनबी की नहीं हैं)।

४.राष्ट्र निर्माण में चरित्र ऊर्जा की महत् भूमिका

यह हमारे देश के प्रति, इसके अतीत और वर्तमान के प्रति, एक असाधारण प्रशस्ति है। उनकी इस प्रशस्ति का उनकी दृष्टि में क्या तात्पर्य था इसे हमें अवश्य समझना चाहिए। उनका तात्पर्य यह था कि इस आधुनिक विश्व की विकलताओं का समाधान भारत है। किन्तु, स्मरण रखो कि यह भारत स्वयं ही विकलताओं से घिरा है। हमलोग भी हिंसा, अपराध, भ्रष्टाचार, स्वार्थपरता, साम्प्रदायिक संघर्ष आदि की समस्याओं से घिरे हैं। ये समस्याएँ हमारे युवजन को

कैसी चुनौती दे रही है? इन चुनौतियों के प्रति युवक और युवती की कैसी प्रतिक्रिया होनी चाहिए? वे कैसे इनका मुकाबला करेंगे? मैं विश्वासपूर्वक तुमलोगों को कहता हूँ कि इस युग में, विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों में जो शिक्षा तुम्हें मिली है या मिली थी- वे सब त्रुटिपूर्ण हैं। तुम लोग इसे भलीभाँति जानते हो कि यदि श्रीरामकृष्ण और स्वामी विवेकानन्द के जीवन एवं उपदेशों से तुमलोग स्वयं शिक्षा ग्रहण कर सको तो तुम सब चिंतन की अत्यंत स्पष्टता तथा मानवीय प्रेम की प्रचुर शक्ति प्राप्त कर सकोगे जो तुम्हें इन चुनौतियों का सामना करने और अत्यंत स्वस्थ पद्धति पर अपने राष्ट्र का पुनर्निर्माण करने में सक्षम करेगी। रामकृष्ण-विवेकानन्द साहित्य में स्पष्ट चिन्तन तथा लोगों के प्रति-विशेषकर दरिद्रतम एवं दुर्बलतम लोगों के प्रति जाति, धर्म और लिंग का विचार किये बिना-प्रेम करने की प्रचुर प्रेरणा तुम्हें मिलेगी। वह हमारे वर्तमान युवजनों के लिए बहुत बड़ी शिक्षा होगी। अपनी युवावस्था में ही तुम्हें अपने को इन राष्ट्रीय तथा मानवीय आदर्शों एवं मूल्यों से उत्प्रेरित कर लेना चाहिए। ३० वर्ष की उम्र के पहले, ५ से ३० वर्षों की उम्र में, मनुष्य को प्रेरक साहित्य का अध्ययन तथा अपने भीतर छिपे हुए प्रचण्ड ऊर्जा-स्रोतों का विकास करना एवं उन्हें एक मानवीय दिशा प्रदान करनी चाहिए। समग्र विश्व को आज ऐसी ही युवा-शक्ति की आवश्यकता है; इसे चरित्रऊर्जा कहा जाता है इसे राष्ट्र-निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करनी है। हमारे पास अर्थ-शक्ति, सौर-ऊर्जा, परमाणु-ऊर्जा और कई इन्य प्रकार की ऊर्जाएँ हैं, किन्तु एक ऊर्जा जो वस्तुतः अन्य सभी ऊर्जाओं को फलीभूत कर सकती है- एक महत्वपूर्ण ऊर्जा जिसकी अब तक हमलोग ने उपेक्षा की है-वह है चरित्र-ऊर्जा, जो वेदान्त के अनुसार आध्यात्मिकता की ऊर्जा है।

चरित्र में दो महान स्रोत निहित रहते हैं। एक है सबल इच्छा से युक्त स्पष्ट बुद्धि, दूसरा है उस इच्छा की मानवजाति की ओर उन्मुखता। वही समस्त चरित्र-ऊर्जा का निर्माण करती है। चरित्र मानवोन्मुखी इच्छा में केन्द्रित रहता है। जब तुम रामकृष्ण-विवेकानन्द साहित्य का अध्ययन करते हो, और जब तुम स[illegible] को वह शिक्षा प्रदान करते हो जो इस प्रकार, व्यक्तित्व के ढाचे का गठन करती है, तब तुम अ[illegible] भीतर रचनात्मक एवं धनात्मक ऊर्जा का विश[illegible] भंडार विकसित करते हो; और जब तुम इसके स[illegible] इस ज्ञान का कि भारत क्या है, भारत क्या था अ[illegible] भारत क्या होगा, सुयोग करते हो, तब तुम [illegible] गतिहीन व्यक्ति से गतिशील व्यक्ति में, अपने देश [illegible] लिए मानव-विकास के लिए होने वाले महायुद्ध [illegible] सुयोग्य सैनिक में रूपान्तरित हो जाते हो। इस प्रक[illegible] ही तुम भारत का पुनर्निर्माण कर सकते हो। स्वा[illegible] विवेकानन्द का शब्द है पुनः-निर्माण। हमारे पुरखों [illegible] इसका निर्माण किया है; किन्तु इसके कुछ हिस्से [illegible] गये हैं; कुछ हिस्से नष्ट हो गये हैं और अ[illegible] अनुपयोगी हो गये हैं। हमें इन सबको काट कर ह[illegible] देना है, और आधुनिक युग के ज्ञान तथा आवश्यकता[illegible] के अनुरूप इस भवन में नये आयामों को जोड़ दे[illegible] है। इसी प्रकार की शिक्षा की अपने देश में प्रयोजनीय[illegible] है। इस पुनर्निर्माण के लिए प्रचुर ज्ञान, प्रचुर शक्ति[illegible] और प्रचुर चिन्तन की जरूरत है। रामकृष्ण-विवेकान[illegible] साहित्य ऐसे ज्ञान, ऐसी प्रेरणा, और ऐसी कर्म-श[illegible] का भांडार-गृह है।

५. 'तुम्हारे देश को परमवीर चाहिए; परमवी[illegible] बनो!'

यह रामकृष्ण-विवेकानन्द युवा-सम्मेलन अप[illegible] महान् राजधानी के युवजनों को मानव विकास औ[illegible] परिपूर्णता के लिए ऐसे ही महायुद्ध छेड़ने के लि[illegible] प्रवृत्त करने के हेतु आयोजित किया गया है। तुम इ[illegible] पुरे नगर में बिखरे पड़े हो। जब तुम लोगों में से कु[illegible] इस सम्मेलन में उपस्थित हो, तो तुम केवल अप[illegible] हो नहीं, बल्कि उन तमाम अन्य युवकों का [illegible] प्रतिनिधित्व कर रहे हो, जो इस सम्मेलन में नहीं [illegible] सके। तुम इस सम्मेलन से प्रेरणा लो और जा[illegible] और अपने क्षेत्रों के दूसरे युवजनों के साथ इस[illegible] सहयोगी बनो। इस प्रकार, अपनी राजधानी के न[illegible] से शुरू कर, एक राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय मानवतावा[illegible] दिशा के साथ युवा शक्ति की एक नयी रचनात्म[illegible]

रंग के उत्पादन में हमलोग सहायता कर रहे हैं। यह मलोगों तथा शेष संसार के लिए एक बड़ा लाभ गा, क्योंकि तुमलोगों की तरह युवजन सदा दिल्ली नहीं रहेंगे; तुम लोग भारत के विभिन्न हिस्सों में या सार के अन्य हिस्सों में जा सकते हो। और जब म कहीं भी जाओ, तुम अपने साथ कुछ अत्यंत ल्यवान-यह ज्ञान, यह समर्पण, यह दृढ़ संकल्प-लेते ाओ। तुम जिस किसी पेशे में प्रवेश करो-चाहे वह त्रकारिता हो, वैज्ञानिक अनुसंधान हो, होटल-बंधन हो, प्रशासन हो, राजनीति हो-जहाँ कहीं तुम वेश करो, अपने साथ तुम कुछ मूल्यवान और त्प्रेरक, कुछ जिन्हें हम अपने देश में अभी बिल्कुल ो चुके हैं, जैसे अपने आप मे श्रद्धा और अपने ाष्ट्र के प्रति श्रद्धा, चरित्र-ऊर्जा तथा भारत का थार्थ ज्ञान और इसका कैसे पुनर्निर्माण करें-लेते ाओ। यह मौन भाव से भारत के पुनर्निर्माण की र्वोत्तम तैयारी होगी। यह एक विशाल कार्य है; इसे करने के लिए पर्याप्त साहस, पर्याप्त आंतरिक स्रोतों की हमें आवश्यकता है। प्रतिदिन हमलोग भारत में अपने इर्द गिर्द की समस्याओं और संकटों और निराशाजनक स्थितियों तथा उन तमाम चीजों के बारे में, जो हमारे और हमारे देश के लिए दोषपूर्ण हैं, भाषणों में सुनते और लेखों में पढ़ते हैं। यह हमें और भी दुर्बल बना रहा है। यथार्थ प्रवृत्ति के अभाव के कारण राष्ट्रीय समस्याएँ प्रतिदिन कई गुणा बढ़ती जा रही हैं और हमारे देश को आकुलित कर रही हैं। हमें चरित्र विकास, जन-भवना, नागरिक-चेतना और कठिन श्रम करने की जरूरत है।

याद रखो, प्रत्येक देश को अपनी रक्षा स्वयं करनी होगी। बाहर से कोई व्यक्ति इस देश को बचाने नहीं आ रहा है। हमें स्वयं इसे बचाना है। अपने बच्चों को हमलोग वह महान् संदेश बता सकते हैं जिसे श्रीकृष्ण ने गीता के छठे अध्याय में दिया है। 'अपने पाँवों पर खड़े होओ और मनुष्य बनो'-वर्तमान समय में स्वामी विवेकानन्द ने गीता(६.५) के प्राचीन संदेश को प्रतिध्वनित करते हुए कहा है :

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः।।

'अपने द्वारा अपना उद्धार करो। स्वयं को अधोगति में नहीं पहुँचाओ। क्योंकि तुम स्वयं अपना मित्र हो और तुम स्वयं अपना शत्रु हो।'

आज के हमारे देश की विषाक्त अवस्थाओं के लिए यह कौन-सी औषधि प्रदान करता है! स्वाधीन होने के बाद हम कई राष्ट्रीय क्षेत्रों में स्वयं अपना शत्रु बने हैं; अब हमें अपना मित्र स्वयं होना सीखना है।

भारत में मानव-विकास के कार्यों को हमें निश्चयपूर्वक तेज करना होगा। इसे हमें स्वयं करना है; यह हमारा दायित्व है; अपना विशेषधिकार है। किस प्रकार हम अपना मित्र होंगे और राष्ट्र की आशाओं को पूर्ण कर सकेंगे?

दूसरा श्लोक इस महान् विचार को स्पष्टता-पूर्वक समझाता है।

बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत् ।।

'जब तुम अपने भीतर के मन और इन्द्रियों सहित शरीर की प्रबल ऊर्जा को संयमित कर लेते हो (और उन्हें मानवोन्मुखी बना देते हो) तब तुम स्वयं अपना मित्र हो जाते हो। और जब तुम ऐसा नहीं करते तब तुम स्वयं अपना शत्रु हो जाते हो (और लोगों के भी शत्रु हो जाते हो)।'

यही संदेश है जिसे इस महान् आचार्य ने हमें सदा के लिए प्रदान किया। हमने उस संदेश पर ध्यान नहीं दिया। हमारे पास यौवनऊर्जा है; किन्तु इसे कैसे संयमित किया जाय, इस अपरिपक्व मानव-ऊर्जा को किस प्रकार चरित्र-ऊर्जा में विकसित किया जाय, यह हम नहीं जानते हैं। आज हमें इसे सीखना है। यही शिक्षा हम लोग आज रामकृष्ण-विवेकानन्द साहित्य से ग्रहण कर सकते हैं। इस साहित्य में निर्बन्ध मानवतावादी प्रवृत्ति का जो उद्दाम संदेश तुम पाते हो, वह संदेश तुम केवल उपनिषदों, गीता, बुद्ध के महत् संदेश, तथा महान् श्रीमद्भागवत में पाते हो। हमें इस संदेश को पचाने की जरूरत है, ताकि स्कूलों और कालेजों में जो खंडित ज्ञान और सूचनाएँ जो हम पाते हैं,

इनके बावजूद, युवजन एक नयी शिक्षा प्राप्त करें। यही शिक्षा समस्त ज्ञान को उच्च चरित्र और व्यावसायिक दक्षता में दान देगी। यह तुम्हारी यौवनपूर्ण ऊर्जा को उस ओर उन्मुख करने में सहायता देने का अवसर प्रदान करता है। स्वाधीनता के पूर्व, एक प्रबल देशभक्तिपूर्ण समर्पण की प्रेरणा से राष्ट्रीय स्वाधीनता के लिए संघर्ष करने और अंततः उसे पाने के लिए भी अपने देश की युवा-शक्ति का हमने उपयोग किया। हमारे हजारों युवकों ने स्वाधीनतापूर्व काल में यह किया है। हमारे लाखों युवाओं को उस परमवीर भाव को ग्रहण करना है और स्वाधीनता के बाद के काल में भी वैसा ही कार्य करना है ताकि भारत के करोड़ों-करोड़ पीड़ित तथा अविकसित मनुष्यों के लिए यह राजनीतिक स्वाधीनता अर्थ-पूर्ण हो सके। 'तुम्हारे देश को परमवीरों की आवश्यकता है, परमवीर बनो!'- स्वामी विवेकानन्द सत्परामर्श देते हैं। प्रत्येक युवक और युवती को इसे अपने ऊपर महान् राष्ट्रीय एवं मानवीय उत्तरदायित्व के रूप में स्वीकार करना ही चाहिए। जब उत्तरदायित्व का यह भाव आयेगा, तब अपनी प्राचीन मातृभूमि के पुनर्निर्माण के लिए अपनी ऊर्जा को दिशा प्रदान करने के निमित्त युवक और युवती श्रीरामकृष्ण और स्वामी विवेकानन्द के जीवन एवं उपदेशों में सर्वोत्तम सहायता और मार्ग-दर्शन पायेंगे। ये उपदेश अपनी सीमा में विश्वजनीन, पवित्र, और गहन व्यावहारिक तात्पर्यों से भरे हुए हैं।

६. व्यावहारिक वेदान्त :

जब कभी हम लोग धर्म के विषय में बोलते हैं तब हमलोग सामान्यतः केवल कुछ अन्धविश्वासों, कुछ पृथक विरोधी विचारों, और प्रायः मानव विरोधी आचारों, जैसे अस्पृश्यता तथा जातीयता को ही ध्यान में रखते हैं। इसके विपरीत, जब तुम रामकृष्ण और विवेकानन्द को पढ़ोगे, तब तुम इतने महत्तम विषय के प्रति इस प्रकार की धारणाओं से पूर्णतः सहमतिपूर्वक भ्रम-रहित हो जाओगे। तुम समझ जाओगे कि वह धर्म नहीं है। सम्पूर्ण मानव-विकास और सब में निहित ब्रह्म-स्फुलिंग के उद्घाटन के गहन संदेश को यथार्थ धर्म कहते हैं। हमलोगों के वेदान्त के द्वारा विकसित धर्म के विज्ञान के अनुसार धर्म का सारतत्त्व आध्यात्मिकता है। इस तरह श्रीरामकृष्ण और स्वामी विवेकानन्द के जीवन तथा उपदेशों के तात्पर्य का अध्ययन एवं समाहार कर हमलोग आध्यात्मिक उन्नयन के द्वारा प्रचंड शक्ति प्राप्त कर सकते हैं।

मैं एक तृतीय व्यक्तित्व-श्रीमाँ सारदा देवी जिनका चित्र भी तुम मंच पर सुसज्जित देखते हो-की भी चर्चा करना चाहता हूँ। वह एक असाधारण व्यक्तित्व थीं-सरल एवं आडम्बरहीन, शक्ति और सौम्यता से समन्वित। शुद्ध प्रेम से परिपूर्ण उनका मातृ-हृदय था जिसने मनुष्यों में, हिन्दू, मुसलमान या ईसाई में, भारतीय या विदेशी में, किसी प्रकार का भेद नहीं किया।

आज हमारे नागरिकों में से प्रत्येक के पीछे इन तीन व्यक्तियों से प्रेरणा का पुंज अग्रसर हो रहा है। अपने यौवन-काल में ही हमें ऐसी प्रेरणा से अपने को भरने के लिए अपना हृदय खोल देना चाहिए। तब हमारे आगे इन विचारों के समाहार एवं उनका व्यावहारिक रूप में कार्यान्वयन के लिए समय है। वेदान्त के महान् दर्शन को अवश्य व्यावहारिक बनाना चाहिए। तुममें से प्रत्येक के सम्मुख पचास या इससे अधिक वर्ष पड़े हुए हैं। इस प्रेरणा से अपना हृदय भर लेने के बाद तुम कितने ही महान् कार्य इस अवधि में कर सकते हो! इस साहित्य का पूरा अध्ययन कर लेना ही सर्वोत्तम शिक्षा और पुनर्शिक्षा है जिसकी हमारे देश को आवश्यकता है और जिसे हमारा देश आज प्राप्त कर सकता है। 'भारतीय जीवन में वेदान्त का प्रभाव'(विवेकानन्द साहित्य, पंचम खंड, पृ० १४२) विषय पर अपने व्याख्यान में विवेकानन्द जो कहते हैं उसे सुनो :

'संसार में ज्ञान के प्रकाश का विस्तार करो; प्रकाश, सिर्फ प्रकाश लाओ। प्रत्येक व्यक्ति ज्ञान के प्रकाश को प्राप्त करे। जब तुम लोग भगवान के निकट न पहुँच जायँ, तब तक तुम्हारा कार्य शेष नहीं हुआ है। गरीबों में ज्ञान का विस्तार करो, धनियों पर और भी अधिक प्रकाश डालो; क्योंकि दरिद्रों की

अपेक्षा धनियों को अधिक प्रकाश की आवश्यकता है। अपढ़ लोगों को भी प्रकाश दिखाओ। शिक्षित मनुष्यों के लिए और अधिक प्रकाश चाहिए, क्योंकि आजकल शिक्षा का मिथ्याभिमान खूब प्रबल हो गया है।

उन्होंने इसके पहले कहा था(वही,पृ०१४१-४१):

'वेदान्त के इन सब महान् तत्वों का प्रचार आवश्यक है, ये केवल अरण्य में अथवा गिरि-गुहाओं में आबद्ध नहीं रहेंगे; वकीलों और न्यायधीशों में, प्रार्थना-मन्दिरों में, दरिद्रों की कुटियों में, मछुओं के घरों में, छात्रों के अध्ययन-स्थलों में-सर्वत्र ही इन तत्वों की चर्चा होगी और ये काम में लाये जायँगे। हर एक व्यक्ति, हर एक संतान चाहे जो काम करे, चाहे जिस अवस्था में हो-उनकी पुकार सबके लिए है। भय का अब कोई कारण नहीं है। उपनिषदों के सिद्धान्तों को मछुए आदि साधारणजन किस प्रकार काम में लायेंगे? इसका उपाय शास्त्रों में बताया गया है। मार्ग अनन्त है, कोई इसकी सीमा से बाहर जा नहीं सकता। तुम निष्कपट भाव से जो कुछ करते हो तुम्हारे लिए वही अच्छा है। अत्यंत छोटा कर्म भी यदि अच्छे भाव से किया जाय, तो उससे अद्भुत फल की प्राप्ति होती है। अतएव जो जहाँ तक अच्छे भाव से काम कर सके, करे। मछुआ यदि अपने को आत्मा समझकर चिन्तन करे, तो वह एक उत्तम मछुआ होगा। विद्यार्थी यदि अपने को आत्मा विचारे तो वह एक श्रेष्ट विद्यार्थी होगा। वकील यदि अपने को आत्मा समझे, तो वह एक अच्छा वकील होगा। औरों के विषय में भी यही समझो।.....यदि मछुआ को तुम वेदान्त सिखलाओगे तो वह कहेगा, हम और तुम दोनों बराबर हैं। तुम दार्शनिक हो, मैं मछुआ; पर इससे क्या? तुम्हारे भीतर जो ईश्वर है, वही मुझमें भी है। हम यही चाहते हैं कि किसी को कोई विशेष अधिकार प्राप्त न हो, और प्रत्येक मनुष्य की उन्नति के लिए समान सुभीते हों। सब लोगों को उनके भीतर स्थित ब्रह्मतत्त्व सम्बन्धी शिक्षा दो। प्रत्येक व्यक्ति अपनी मुक्ति के लिए स्वयं चेष्टा करेगा।

'उन्नति के लिए सबसे पहले स्वाधीनता की आवश्यकता है।'

७. अपने चरित्र में 'पूर्व और पश्चिम का ताल-मेल करना होगा।

स्वामीजी का साहित्य ऐसे विस्मयकारी विचारों से भरा पड़ा है। अपने पत्र में वे दो प्रकार के चरित्र बल की चर्चा करते हैं-एक, जिसे हमने राष्ट्रीय परम्परा से प्राप्त की है, और दो, जिसे आधुनिक-काल में पश्चिम ने अपनी महत् उलब्धियों के द्वारा प्रदर्शित किया है। इन दो उपलब्धियों के पीछे दो चरित्र-बल हैं। हमें अपने राष्ट्रीय चरित्र में इनका समन्वय करना है। ये क्या है? शिकागो से १८८४ ई० में अपने 'मद्रास के शिष्यों के नाम' लिखित पत्र (पत्रावली : पृ० १०२-४) में स्वामी विवेकानन्द हमलोगों को निम्नलिखित उपदेश देते हैं :

'जाति-भेद रहेगा या जायेगा, इस प्रश्न से मुझे कुछ मतलब नहीं है। मेरा विचार है कि भारत और भारत के बाहर मनुष्य-जाति में जिन उदार भावों का विकास हुआ है, उसकी शिक्षा गरीब से गरीब और हीन से हीन को दी जाय और फिर उन्हें स्वयं विचार करने का अवसर दिया जाय। जाति-भेद रहना चाहिए या नहीं, महिलाओं को पूर्ण स्वतंत्रता मिलनी चाहिए या नहीं, मुझे इससे कोई वास्ता नहीं "विचार और कार्य की स्वतंत्रता ही जीवन की उन्नति और कुशल-क्षेम का एकमेव साधन है।" जहाँ स्वतंत्रता नहीं है, उस मनुष्य, उस जाति या राष्ट्र की अवनति निश्चय होगी।

जाति-भेद हो या न हो, लोकाचार हो या न हो, परन्तु जो मनुष्य या मनुष्य श्रेणी, जाति, राष्ट्र या सम्प्रदाय किसी व्यक्ति के स्वतन्त्र विचार या कर्म में बाधा डालती है, वह राक्षसी है और उसका नाश अवश्य होगा। **परन्तु स्मरण रहे कि वह स्वतन्त्रता किसी को हानि पहुँचानेवाली न होनी चाहिए।**

'जीवन में मेरी सर्वोच्च अभिलाषा यह है कि एक ऐसा चक्र परिवर्तन कर दूँ, जो कि उच्च एवं श्रेष्ट विचारों को सबके द्वार-द्वार पहुँचा दें। फिर स्त्री-पुरुषों को अपने भाग्य का निर्णय स्वयं करने दो। हमारे पूर्वजों ने तथा अन्य देशों ने जीवन के

महत्वपूर्ण प्रश्नों पर क्या विचार किया है, यह सर्व-साधारण को जानने दो विशेषकर उन्हें यह देखने दो कि और लोग क्या कर रहे हैं। फिर उन्हें अपने निर्णय करने दो रासायनिक द्रव्य इकट्ठे कर दो और प्रकृति के नियमानुसार वे किसी विशेष आकार को धारण कर लेंगे।

'परिश्रम करो, अटल रहो और भगवान पर श्रद्धा रखो। काम शुरू कर दो। मैं भी शीघ्र ही आ जाऊँगा। "धर्म को बिना हानि पहुँचाये जनता की उन्नति"- इसे अपना आदर्श वाक्य बना लो।

'याद रखो कि राष्ट्र झोपड़ी में बसा हुआ है; परन्तु खेद है, उन लोगों के लिए कभी किसी ने कुछ नहीं किया। हमारे आधुनिक सुधारक विधवाओं का विवाह करने में लगे हुए हैं। निश्चय ही मुझे प्रत्येक सुधार से सहानुभूति है, परन्तु राष्ट्र की भावी उन्नति विधवाओं को पति मिलने पर नहीं वरन जनता की अवस्था पर निर्भर है। क्या तुम जनता की उन्नति कर सकते हो? क्या उनका खोया हुआ व्यक्तित्व, बिना उनकी स्वाभाविक आध्यात्मिक-वृति को नष्ट किये, तुम वापस कर सकते हो?

'क्या अभिन्नता, स्वतंत्रता, कार्य-कौशल, पौरुष में तुम पश्चिमियों के भी गुरु बन सकते हो? क्या उसी के साथ-साथ धर्म-विश्वास और स्वाभाविक धार्मिक वृति में हिन्दुओं की परम मर्यादा पर जमे रह सकते हो? यह हमारा काम है और हम इसे करेंगे ही। तुम सबने इसी के लिए जन्म लिया है। अपने में विश्वास रखो। दृढ़ विश्वास से बड़े-बड़े कर्मों की उत्पत्ति होती है। हमेशा आगे बढ़ो। मरते दम तक गरीब और पद-दलितो के लिए सहानुभूति रखना-यही हमारा आदर्श वाक्य है। वीर युवको! आगे बढ़ो।

शुभाकांक्षी,
विवेकानन्द

जीवन का एक गंभीर आध्यात्मिक अर्थ है। इसका एक आध्यात्मिक आयाम है। यह मात्र जगत नहीं है जिसे तुम पंचेन्द्रियों से देखते हो। इसमें कुछ इसके अतिरिक्त है-जो ऐन्द्रिक आयाम से परे है। वेदान्त और बौद्धमत वास्तविकता के इन दो आयाम को लोक और लोकोत्तर कहते हैं। लोक वह जिसका अनुभव तुम पंचेन्द्रियों से करते हो। अर्थात लोक वह है जिसका संचालन तुम भौतिक विज्ञानों, राजनीति, अर्थशास्त्र और अन्य सामाजिक-विज्ञानों द्वारा करते हो। वास्तविकता के इस आयाम के संचालन के द्वारा भौतिक समृद्धि आती है। किन्तु, नैतिक, सौन्दर्यमूलक तथा समस्त उच्चतर आध्यात्मिक मूल्य एवं मानवीय विकास तथा परिपूर्णता लोकोत्तर या असीम आत्म हम सब में प्रच्छन्न ब्रह्माग्नि की चिनगारी के द्वारा आते हैं। जीनव की वैयक्तिक और सामूहिक-परिपूर्णता की प्राप्ति के लिए, हमलोगों को एक शक्ति का दूसरी शक्ति से तालमेल करना होगा। हमलोगों का देश लगातार प्राचीन वैदिक काल के परम प्रज्ञावान ऋषियों से लेकर श्रीरामकृष्ण के आधुनिक युग तक यथार्थता के **लोकोत्तर** आयाम में दीक्षित होता जा रहा है। हमें इसे दृढ़ता से पकड़े रहना है और तब आधुनिक पश्चिमी लोगों के द्वारा यथार्थता के लोक आयाम के कुशल संचालन से अद्‌भुत शुद्ध गुणों और वरदानों जिन्हें स्वामीजी **समता, स्वाधीनता, शक्ति और कर्म के भाव के** रूप में उल्लेख करते हैं, को अपनाने के लिए अपनी बाँहें फैलानी होगी। विवेकानन्द कहते हैं कि इन दोनों के सम्मिलित शक्ति से हमलोग भारत का भारतीय पद्धति से पुनर्निर्माण कर सकते हैं। हमलोग अतीत की अपेक्षा अपने भविष्य को अधिक ज्योतिर्मय बनायँगे।

८. विवेकानन्द और हमारे युवजन :

अपने देश के युवकों को यही चुनौती उन्होंने दी है। अपने गुरुदेव श्रीरामकृष्ण की भाँति उन्हें भी अपने युवजनों में प्रचण्ड विश्वास था। उनके मद्रास, कलकत्ता और लाहौर के व्याख्यानों में तुम इसे लक्ष्य करोगे। भारत के पुनर्निर्माण के लिए अपनी योजना के विषय में, १८९७ ई० में मद्रास में अपना व्याख्यान देते हुए स्वामीजी ने कहा था (विवेकाननद साहित्य पंचम खंड पृ० १९८-९७) :

'यही मेरी योजना है। तुमको यह बड़ी भारी मालूम होगा, पर इसकी इस समय बहुत आवश्यकता

है। तुम पूछ सकते हो, इस काम के लिए धन कहाँ से आयेगा? धन की जरूरत नहीं। धन कुछ नहीं है। पिछले बारह वर्षों से मैं ऐसा जीवन व्यतीत कर रहा हूँ कि मैं यह नहीं जानता कि आज यहाँ खा रहा हूँ तो कल कहाँ खाऊँगा। और न मैंने कभी इसकी परवाह ही की। धन या किसी भी वस्तु की जब मुझे इच्छा होगी, तभी वह प्राप्त हो जायेगा, क्योंकि वे सब मेरे गुलाम हैं, न कि मैं उनका गुलाम हूँ। जो मेरा गुलाम है, उसे मेरी इच्छा होते ही मेरे पास आना पड़ेगा। अतः उसकी कोई चिन्ता न करो।

'अब प्रश्न है कि काम करने वाले लोग कहाँ हैं? मद्रास के नवयुवकों, तुम्हारे ऊपर ही मेरी आशा है। क्या तुम अपनी जाति और राष्ट्र की पुकार सुनोगे? यदि तुम्हें मुझ पर विश्वास है तो मैं कहूँगा कि तुममे से प्रत्येक का भविष्य उज्जवल है। अपने आप पर अगाध, अटूट विश्वास रखो, वैसा ही विश्वास जैसा मैं बाल्यकाल में अपने ऊपर रखता था और जिसे अब मैं कार्यान्वित कर रहा हूँ। तुममें से प्रत्येक अपने आप पर विश्वास रखो। यह विश्वास रखो कि प्रत्येक की आत्मा में अनन्त शक्ति विद्यमान है। तभी तुम सारे भारतवर्ष को पुनरूज्जीवित कर सकोगे। फिर तो हम दुनिया के सभी देशों में खुलेआम जायँगे और आगामी दस वर्षों में हमारे भाव उन सब विभिन्न शक्तियों के एक अंशरूप हो जायँगे, जिनके द्वारा संसार का प्रत्येक राष्ट्र संगठित हो रहा है। हमें भारत में बसने वाली और भारत के बाहर बसनेवाली सभी जातियों के अन्दर प्रवेश करना होगा। इसके लिए हमें कर्म करना होगा। और इस काम के लिए मुझे युवक चाहिए। वेदों में कहा है,'युवक, बलशाली, स्वस्थ, तीव्र मेधावाले और उत्साह युक्त मनुष्य ही ईश्वर के पास पहुँच सकते हैं।" तुम्हारे भविष्य को निश्चित करने का यही समय है। इसलिए मैं कहता हूँ कि अभी इस भरी जवानी में, इस नये जोश के जमाने में ही काम करो, जीर्ण-शीर्ण हो जाने पर काम नहीं होगा। काम करो, क्योंकि काम करने का यही समय है। सबसे अधिक ताजे, बिना स्पर्श किये हुए और बिना सूँघे फूल ही भगवान के चरणों पर चढ़ाये जाते हैं। और उसे ही ग्रहण करते हैं।' और कुछ दिनों के बाद कलकत्ते में अपने स्वागत का उत्तर देते हुए उन्होंने कहा (वही : पृष्ठ २१२)

"कलकत्ता निवासी युवको! उठो जागो, शुभ मुहूर्त आ गया है। सब चीजें अपने आप तुम्हारे सामने खुलती जा रही हैं। हिम्मत करो और डरो मत। केवल हमारे ही शास्त्रों में ईश्वर के लिए 'अभीः' विशेषण का प्रयोग किया गया है। हमें 'अभीः' होना होगा, तभी हम अपने कार्य में सिद्धि प्राप्त करेंगे। उठो, जागो, तुम्हारी मातृभूमि को इस महाबलि की आवश्यकता है। इस कार्य की सिद्धि युवकों से ही हो सकेगी। 'युवा', आशिष्ठ, द्रढ़िष्ठ, बलिष्ठ, मेधावी', उन्हीं के लिए यह कार्य है। और ऐसे सैकड़ों हजारों युवक कलकत्ते में हैं। जैसा कि तुमलोग कहते हो,-यदि मैंने कुछ किया है, तो याद रखना, मैं ही एक नगण्य बालक हूँ जो किसी समय कलकत्ते की सड़कों पर खेला करता था। अगर मैंने इतना किया तो इससे अधिक तुम कर सकोगे! उठो-जागो, संसार तुम्हें पुकार रहा है....इसलिए कलकत्ते के युवको, अपने रक्त में उत्साह भर कर जागो। मत सोचो कि तुम गरीब हो, मत सोचो कि तुम्हारे मित्र नहीं हैं। अरे, क्या तुमने कभी देखा है कि रुपया मनुष्य का निर्माण करता है। यह सम्पूर्ण संसार मनुष्य की शक्ति से, उत्साह की शक्ति से, विश्वास की शक्ति से निर्मित हुआ है।"

और 'वेदान्त' विषय पर १२ नवम्बर,१८९७ ई. को लाहौर की एक विशाल जनसभा को सम्बोधित करते हुए स्वामीजी ने इन अग्निमय शब्दों में पंजाब के युवकों को प्रबोधित किया(वही : पृ ३१९-२१):-

अतः लाहौर के युवको, निश्चयपूर्वक समझो इस अनुवांशिक तथा राष्ट्रीय महापाप के लिए हमीं लोग उत्तरदायी हैं। बिना इसे दूर किये हमारे लिए कोई दूसरा उपाय नहीं है। तुम चाहे हजारों समितियाँ गढ़ लो, चाहे बीस हजार राजनीतिक सम्मेलन करो, चाहे पचास हजार संस्थाएँ स्थापित करो, इसका कोई फल नहीं होगा, जब तक तुम्हारे भीतर वह सहानुभूति, वह प्रेम न आयेगा, जब तक तुम्हारे भीतर वह हृदय

न आयेगा, जो सबके लिए सोचता है। जब तक फिर से भारत को बुद्ध का हृदय प्राप्त नहीं होता और भगवान कृष्ण की वाणी व्यावहारिक जीवन में परिणत नहीं की जाती, तबतक हमारे लिए कोई आशा नहीं। तुम लोग यूरोपियनों और उनकी सभा-समितियों का अनुकरण कर रहे हो, परन्तु उनके हृदय के भावों का तुमने क्या अनुकरण किया है?.......

"अतः, हे लाहौर के युवको, फिर अद्वैत की वही प्रबल पताका फहराओ, क्योंकि और किसी आधार पर तुम्हारे भीतर वैसा अपूर्व प्रेम पैदा नहीं हो सकता। जब तक तुम लोग उसी एक भगवान् को सर्वत्र एक ही भाव से अवस्थित नहीं देखते, तब तक तुम्हारे भीतर वह प्रेम पैदा नहीं हो सकता-उसीं प्रेम का पताका फहराओ। उठो, जागो जब तक लक्ष्य पर नहीं पहुँचते तब तक मत रूको। उठो, एक बार और उठो, क्योंकि त्याग के बिना कुछ भी नहीं हो सकता। दूसरे की यदि सहायता करना चाहते हो, तो तुम्हें अपने अहंभाव को छोड़ना होगा...तुम सब कुछ दूर फेंको-यहाँ तक कि अपनी मुक्ति का विचार भी दूर रखो-जाओ, दूसरों की सहायता करो। तुम सदा बड़ी-बड़ी साहसिक बातें करते हो, परन्तु अब तुम्हारे सामने यह व्यावहारिक वेदान्त रखा गया है। तुम अपने इस तुच्छ जीवन की बलि देने को तैयार हो जाओ।

"यदि यह जाति बची रहे तो तुम्हारे और हमारे जैसे हजारों आदमियों के भूखे मरने से भी क्या हानि होगी? यह जाति डूब रही है। लाखों प्राणियों का श्राप हमारे सिर पर है, सदा ही अजस्त्र जलधारवाली नदी के समीप रहने पर भी तृष्णा के समय पीने के लिए हमने जिन्हें नाबादान का पानी दिया, उन अगणित लाखें मनुष्यों का, जिनके सामने भोजन का भण्डार रहते हुए भी जिन्हें हमने भूखों मार डाला, जिन्हें हमने अद्वैतवाद का तत्त्व सुनाया और जिनसे हमने अतीव घृणा की, जिनके विरोध में हमने लोकाचार का विरोध किया, जिनसे जबानी तो यह कहा कि सब बराबर है, सब वही एक ब्रह्म है, परन्तु इस उक्ति को काम में लाने का तिल मात्र भी प्रयत्न नहीं किया। 'मन में रखने से ही काम हो जाएगा परन्तु व्यावहारिक संसारी में अद्वैतवाद को घसीटना?-हरे, हरे!!' अपने चरित्र का यह दाग मिटा दो। 'उठो, जागो।' यदि यह छुद्र जीवन चला भी जाय तो क्या हानि है? सभी मरेंगे-साधु या असाधु, धनी या दरिद्र-सभी मरेंगे। चिरकाल तक किसी का शरीर नहीं रहेगा। अतएव उठो, जागो और सम्पूर्ण रूप से निष्कपट हो जाओ। भारत में घोर कपट समा गया है-चाहिए चरित्र, चाहिए इस तरह की दृढ़ता और चरित्र का बल जिससे मनुष्य आजीवन दृढ़वत बन सके।

६. श्रीरामकृष्ण और हमारे युवजन :

"श्रीरामकृष्ण ने हृदय से युवकों को प्यार किया वह प्रेम मनुष्य और उसकी दैवी सम्भावनाओं की गंभीर वेदान्ती दृष्टि पर आधारित था। उन्होंने इस गहन दृष्टि की चर्चा अपने समीप आने वाले भक्तों से बातचीत के क्रम में की है, जिसे उनके एक गृही भक्त, स्कूल-शिक्षक महेन्द्रनाथ गुप्त-ने, जो अपनी पहचान गुप्त रखने के लिए अपने को 'म' कहते थे-संकलित एवं ग्रंथाकार प्रकाशित किया है। यह ग्रंथ है, विश्व विख्यात 'श्रीरामकृष्ण वचनामृत'।

श्रीरामकृष्ण-हाजरा मुझे उपदेश देता है कि तुम इन लड़कों के लिए इतनी चिन्ता क्यों करते हो! गाड़ी में बैठकर बलराम के मकान जा रहा था, उसी समय मन में बड़ी चिन्ता हुई। कहने लगा, 'माँ', हाजरा कहता है, नरेन्द्र आदि बालकों के लिए मैं इतनी चिन्ता क्यों करता हूँ; वह कहता है, ईश्वर की चिन्ता त्याग कर इन लड़कों की चिन्ता आन क्यों करते हैं? मेरे यह कहते-कहते माँ ने दिखलाया कि वे ही मनुष्य रूप में लीला करती हैं। शुद्ध आधार में उनका प्रकाश स्पष्ट होता है। इस दर्शन के बाद जब समाधि कुछ टूटी तो हाजरा के ऊपर बड़ा क्रोध हुआ। कहा, साले मेरा मन खराब कर दिया था। फिर सोचा, उस बेचारे का अपराध ही क्या है; वह यह कैसे जान सकता है?

"मैं इन लोगों को साक्षात् नारायण जागता हूँ। नरेन्द्र के साथ पहले भेंट हुई। देखा, देहबुद्धि नहीं है। जरा छाती को स्पर्श करते ही उसका बाह्य-ज्ञान

लोप हो गया। होश आने पर कहने लगा,'आपने यह क्या किया! मेरे तो माता-पिता हैं।' यदु मल्लिक के मकान में भी ऐसा ही हुआ था। क्रमशः उसे देखने के लिए व्याकुलता बढ़ने लगी, प्राण छटपटाने लगे। तब भोला नाथ से कहा,'क्योंजी, मेरा मन ऐसा क्यों होता है?' भोलानाथ बोले, 'इस सम्बंध में महाभारत में लिखा है कि समाधिवान् पुरुष का मन जब नीचे उतरता है, तब संतोगुणी लोगों के साथ विलास करता है। संतोगुणी मनुष्य देखने से उसका मन शान्त होता है।'-यह सुनकर मेरे चित्त को शान्ति मिली। बीच-बीच में नरेन्द्र को देखने के लिए मैं बैठा-बैठा रोया करता था।" [१]

"इन लड़कों में कामनी और कांचन का प्रवेश अभी तक नहीं हो पाया। इसीलिए तो मैं उन्हें इतना प्यार करता हूँ। हाजरा कहता है, 'धनी लोगों के सुन्दर लड़के देखकर तुम उन्हें प्यार करते हो।' अगर यही बात है तो हरीश, लाटू, नरेन्द्र इन्हें मैं क्यों प्यार करता हूँ? नरेन्द्र को तो रोटी खाने के लिए नमक खरीदने के लिए भी पैसे नहीं मिलते।

"इन लड़कों में विषय बुद्धि अभी नहीं पैठी। इसीलिए उनका मन इतना शुद्ध है।

"और बहुतेरे उनमें नित्य सिद्ध भी हैं। जन्म से ही ईश्वर की ओर मन लगा हुआ है। जैसे तुमने एक बगीचा खरीदा। साफ करते ही कहीं जल का स्रोत तुम्हें मिल गया। मिट्टी हटी नहीं कि कलकल स्वर से पानी निकलने लगा।"

बलराम- महाराज, संसार मिथ्या है, यह ज्ञान पूर्ण को एकदम कैसे हो गया?

श्रीरामकृष्ण- जन्मान्तरीण। पिछले जन्मों में सब किया हुआ है। शरीर ही छोटा और वृद्ध होता रहता है, पर आत्मा के लिए वह बात नहीं।

'वे कैसे हैं, जानते हो?- जैसे पहले फल लगकर फिर फूल हों। पहले दर्शन, फिर गुण-महिमा आदि का श्रवण, फिर मिलन।

"निरंजन को देखो-न लेना है, न देना।- जब पुकार होगी, तभी चला जा सकता है। परन्तु जब तक मनुष्य की माँ जीवित है, तब तक उसे भरण-पोषण करना चाहिए। मैं अपनी माँ की फूल-चन्दन से पूजा करता था। वह जगन्माता ही हैं जो हमारे लिए सांसारिक माता के रूप में विराजमान हैं।" [२]

१०. मानव-इतिहास के आधुनिक काल का अद्भुत अन्वेषण :

इतिहास का यह भयंकर काल है जिसमें हमलोग रह रहे हैं। मानवता जो कुछ सर्वोत्तम दे सकती है उसका हमें समाहार करना है। वह एक नयी चरित्र-उर्जा का सृजन करेगा, मात्र जिसके द्वारा हमलोग अपने देश के सुदीर्घ एवं गौरवोज्वल इतिहास का एक अधिक गौरवोज्वल अध्याय लिख सकते हैं।

पश्चिम जगत हमें जो दे सकता है उसके सर्वोत्तम का समाहार करो न कि उसका जो उसकी संस्कृति में तुच्छ और साधारण है। जो उसमें सस्ता और तुच्छ है वह उनके लिए भी बुरा है और वे उससे पिण्ड छुड़ाने को उत्कंटित हैं। इसलिए पश्चिम से हमें वह नहीं लेना चाहिए जो तुच्छ और भड़कीला है। मैं इसे पश्चिमी संस्कृति का 'कोकाकोला पक्ष' समझता हूँ। दुर्भाग्यवश हममें से कुछ लोग उसी की खोज करते हैं। लेकिन हमें उनकी वैज्ञानिक प्रकृति, उनकी व्यावहार-कुशलता, उनकी मानवीयता, उनका जिज्ञासा-भाव, और उनकी ऊर्जा को अपने में समाहार करना है, तथा इसके साथ हमलोगों को अपने जीवन के प्रति अपने आध्यात्मिक भाव के परम्परागत गुणों और लालित्यों का समन्वय करना है। इन दोनों का समन्वय करो और तुम्हारे भीतर प्रचण्ड चरित्र-उर्जा का विकास हो जायगा, जो विश्व में अपूर्व होगा। सारा विश्व आज इसकी तलाश कर रहा है। आधुनिक पाश्चात्य जगत भी अपनी परपंरागत विरासत के साथ भारत एवं पूर्वी जगत की परम्परागत आध्यात्मिक विरासत के समन्वय का संधान कर रहा है। आधुनिक काल के मानव-इतिहास का यह अद्भुत अन्वेषण है। पूर्व कथित टोयनबी की अभ्युक्ति पश्चिम के वर्त्तमान अनेक चिन्तकों में से केवल एक की अभ्युक्ति है। वे सभी भारत की प्राचीन आध्यात्मिक सम्पदा को समस्त मानवता की सम्पदा बनाना चाहते हैं। भारत का यही दायित्व है। हम इसका निर्वाह कैसे

१. श्रीरामकृष्ण वचनामृतः प्रथम भागः १६८०,पृ.३२३-२४। २. वहीः तृतीय भागः १६५२, पृ. २१७-१८

कर सकते हैं जबकि हमने अपने ही सर्वसाधारण मनुष्यों के शरीर और मन को स्वस्थ्य नहीं बनाया है? अपनी विदेश नीति को सुदृढ़ बनाने के लिए अपनी गृहनीति को सुदृढ़ बनाना ही होगा। संसार के अन्य हिस्सों को आनन्दकारक और उन पर अपनी छाप छोड़ने की आशा करने के पहले हमारे देश को स्वयं ही सुदृढ़, अधिक एकतापूर्ण, और आजकल पायी जाने वाली इन सभी निराशाजनक आर्थिक और सामाजिक स्थितियों से मुक्त होना ही होगा। आधुनिक भारत के युवजनों के सामने यही एक महान् विशेषाधिकार और सुअवसर है।

और यह रामकृष्ण विवेकानन्द युवा सम्मेलन अपने पाँच हजार वर्षों के इतिहास पर पड़ी इसी विस्मयकारी नयी चुनौतियों की ओर तुम्हारा ध्यान आकृष्ट करने के उद्देश्य से आयोजित हुआ है। आधुनिक काल उस इतिहास का अत्यंत चुनौती भरा अध्याय है। हमें इसका अवश्य ही ध्यान रखना चाहिए। विगत पाँच सौ वर्षों से हमने इतिहास नहीं बनाया। हम निद्राभिमुख हो गये और इतिहास की 'सृष्टि', तथा इतिहास के शिकार हो गये। हमने आधुनिक युग के इतिहास का निर्माण करना तब शुरू किया जब उन्नीसवीं शताब्दी में भारत ने स्वयं को जाग्रत किया, जिसकी व्यापक रचनात्मक शक्ति ने स्वामी विवेकानन्द को महान् देश अमेरिका में भेजा और जिसने उस अति विकसित देश के लोगों के मन में एक गंभीर प्रभाव उत्पन्न किया। आधुनिक भारतीय इतिहास के निर्माण-काल का यह मंगलाचरण है। हमलोग अभी उसी काल में रह रहे हैं। अपने जीवन काल में हमलोग उस सृजानात्मकता का थोड़ा अंश भी ग्रहण करें। हम केवल इतिहास का अध्ययन ही नहीं करें, बल्कि इतिहास का निर्माण भी करें। सम्प्रति यही सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। एक महान् वैज्ञानिक, एक महान् मानवतावादी, एक महान राजनीतिज्ञ, एक महान प्रशासक, एक मौलिक चिन्तक, एक महान् नागरिक और एक महान् धार्मिक मनीषी बनकर इस इतिहास का निर्माण करो। ऐसे हजारो रास्ते हैं जिनके द्वारा अपने इतिहास का पुनर्निर्माण किया जा सकता है। इसे करने के ये मात्र कुछ रास्ते हैं। भारत के पुनर्निर्माण का कार्य इसी प्रकार से शु... किया जा सकता है। युव-जन पहले सृजनात्मक बनें और अपने मन और जीवन से शताब्दियों से च... आ रही राष्ट्रीय जड़ता को हटा दें, तथा इस सत्य को गहराई से ग्रहण करें कि उनके राष्ट्रीय इतिहास में इस आधुनिक काल में मानव विकास- वैयक्तिक और सामूहिक, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय-की महान् संभावनाएँ हैं। तब वे इतिहास की सृष्टि बने रहने की अपेक्षा इतिहास-निर्माता, इतिहास-स्रष्टा की गहन भूमिका का निर्वाह करने के लिए स्वयं को नियोजित करें।

११. निष्कर्ष :

तुमलोग आज इसी गौरवमयी परिस्थिति में नियोजित किये गये हो। समग्र भारत के युवजन का यही विशेषाधिकार और दायित्व है। भारत के इस राजधानी नगर को भारत के शेष हिस्सों के लिए एक आदर्शपूर्ण होना ही चाहिए। अभी यह नहीं है। भारत के अन्य हिस्सों की अपेक्षा इस दिल्ली में अधिक अपराध, अधिक मदिरा सेवन, और अधिक नशीले द्रव्यों का सेवन होता है। सम्प्रति यह आदर्श नगर नहीं है, किन्तु इसे अपने देश का आदर्श नगर बनना चाहिए।

हमारे इस राजधानी-नगर को स्वस्थ रक्त को उत्पन्न और सुदूरतम क्षेत्रों में बसे सर्व-साधारण-जन में इसका संचार करने के योग्य होना ही चाहिए। इस राजधानी के युवकों को अपने ऊपर यह दायित्व अवश्य ही लेना चाहिए। तब हम भारत के पुनर्निर्माण की क्रिया में आनेवाली उस तीव्रता का दर्शन कर सकेंगे जो स्वाधीनता-प्राप्ति के बाद अब तक कभी नहीं थी। इस विस्मयकारी शताब्दी के शेष वर्षों को इस रचनात्मक विज्ञान में अवश्य ही लगाना चाहिए। हम अभी जो कर रहे हैं वह निषेधात्मक विज्ञान है। देश की बुराइयों के प्रति चिल्लाना नहीं; बल्कि नीरवतापूर्वक उन्हें ढूँढ़ना और प्रभावशाली तरीके से उनकी चिकित्सा करना-यह रचनात्मक विज्ञान है। प्राचीन उपनिषदों के ऋषियों की उस मर्मवाणी से हमारे युवजन प्रेरणा ग्रहण करें जिसे आधुनिक युग के ऋषि स्वामी विवेकानन्द ने मुक्त रूप से प्रस्तुत किया है : "उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत" 'उठो, जागो और तब तक रुको नहीं, जब तक लक्ष्य प्राप्त न हो जाय।'

कुम्भ पर्व

- स्वामी उरुक्रमानन्द
अद्वैत आश्रम, कोलकाता

कुम्भ हमारे हिन्दू धर्म का महान पर्व है। इसको सभी पर्वों से महत्वपूर्ण माना गया है। किन्तु हिन्दू धर्म का प्रत्येक व्यक्ति मन में यह कामना अवश्य रखता है कि वह एक न एक बार कुम्भ पर्व पर स्नान करे। कुम्भ भारत के चार स्थानों पर लगता है। ये स्थान हैं, हरिद्वार, प्रयाग, उज्जैन और नासिक। महाकुम्भ अर्थात् पूर्ण कुम्भ सिर्फ बारह वर्ष बाद पड़ने वाला एक पर्व ही नहीं है, अपितु यह हमारी महान भारतीय संस्कृति और अखण्डता का परिचायक है। इस महापर्व का एक धार्मिक सन्देश भी है। यह सन्देश लोगों को पुख्ता यकीन दिलाता है कि कुम्भ पर गंगा स्नान करने से सभी पापों से मुक्ति मिल जाती है। उत्तर प्रदेश का यह सौभाग्य है कि धरती पर जिन चार स्थानों पर कुम्भ मेले लगते हैं उनमें से दो इसी राज्य में हैं। अव इनमें से एक उत्तरांचल में चला गया है। संयोग ही है कि उत्तर प्रदेश के प्रयाग और उत्तरांचल के हरिद्वार में अर्द्धकुम्भ प्रत्येक छः वर्ष बाद भरते हैं। देश में दो अन्य कुम्भ स्थलों में उज्जैन और नासिक में अर्द्धकुम्भ की परम्परा नहीं है।

स्कन्द पुराण में लिखा है :-

गंगा द्वारे प्रयागे च, धारा गोदावरी तटे।
कुम्भाख्यौ दिव्य योगोऽयं प्रोच्यते शंकारादिभिः।।

अर्थात हद्विार, प्रयाग, उज्जैन और नासिक ये कुम्भ के चार स्थल हैं। इनमें हद्विार गंगा तट पर, प्रयाग गंगा-यमुना तथा सरस्वती के संगम पर, उज्जैन क्षिप्रा नदी के तट पर एवं नासिक गोदावरी के तट पर वसे हुए पौराणिक तीर्थ और महत्व के नगर हैं। अर्द्धकुम्भी मात्र हरिद्वार और प्रयाग में लगती है।

कुम्भ शब्द की व्युत्पति

भारतीय वाङ्मय में कुम्भ शब्द को व्यापक अर्थ एवं स्थान प्राप्त हुआ है। प्रसंग के अनुसार अर्थ भेद हो जाता है। हम यहाँ कुम्भ शब्द का अर्थ निरुक्तिपूर्वक दे रहे हैं।

निरुक्ति :- कुम्भ कुं भूमि कुत्सितं वा उम्भयति पूरयति-(उम्भ+अच्। शंक = नाग) घड़ा, जलपात्र, करवा।

भारतीय संस्कृति में कुम्भ -

भारतीय संस्कृति में कुम्भ मंगल का प्रतीक है। शकुन का प्रतीक है। यह शोभा, सौन्दर्य एवं पूर्णत्व का वाचक है। स्वस्तिक चिन्हों से अंकित, अक्षत, दूर्वा, नारियल फल तथा आम्रपल्लवों से युक्त जलपूर्ण कुम्भ वैदिक एवं पौराणिक काल से लेकर आधुनिक काल तक मंगल का प्रतीक बना चला आ रहा है। भवनों के द्वार पर मन्दिरों के गोपुरों तथा शिखरों पर प्रत्येक यज्ञ याग में गर्भाधान से लेकर मृत्यु संस्कार तक इस जलपूर्ण कुम्भ की स्थिति दिखाई पड़ती है। बिना इसके भारतीय जीवन के मांगलिक प्रसंग एवं संस्कार कृत्य इत्यादि की कल्पना ही नहीं की जा सकती है। किसी भी सम्प्रदाय अथवा जाति का धर्म-प्रिय व्यक्ति हो, उसे पूजा, अर्चा एवं यज्ञ-याग में सर्वत्र सर्वप्रथम कलश का स्थापन और पूजन करना ही होगा। प्रेत-पिशाचों से लेकर देवी-देवताओं तक की आराधना, अर्चना एवं साधना में कुम्भ का बड़ा महत्व है।

कुम्भ से बना हुआ शब्द कुम्भक है। यह योग शास्त्रों में कुम्भक प्राणायाम के रूप में प्रतिष्ठित है, भरे हुए होने का प्रतीक है। विशालता, भव्य एवं शोभा के लिए साहित्य में कुम्भ शब्द का बहुत व्यापक प्रयोग हुआ है। हमें जिस 'कुम्भ' से प्रयोजन है, वह 'कुम्भ-पर्व' से सम्बन्धित है। कुम्भ पर्व में जिस ऐतिहासिक कुम्भ (घट, पात्र) का स्मरण किया जाता है, वह अमृत-कुम्भ यानी सुधा-कलश है, जिसके लिए वैदिक काल का प्रसिद्ध देवासुर संग्राम हुआ था। वह इतनी वड़ी घटना थी जिसे वैदिक संस्कृतिवाला यह भारतवर्ष कभी भूलना नहीं चाहता। उसके प्रतिफल ने भारतीय जीवन के सभी क्षेत्रों को प्रभावित किया था। इसलिए यह महत्वपूर्ण घटना हो गयी थी देवासुर संग्राम के पूरे घटना चक्र में ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्र आदि सभी देवता विप्रचित्ति आदि सभी असुर वासुकि जैसे नाग एवं समुद्र तथा सुमेरू पर्वत तक उलझे हुए थे। वह था समुद्र मन्थन। उस

समुद्र-मन्थन से अनेक रत्न निकले, जिनमें एक अमृत कुम्भ भी था। इसी को पाने के लिए देवासुर संग्राम हुआ। अतः उस पूरे घटनाक्रम में इससे जुड़ी सभी वस्तुओं में अमृत कुम्भ ही सर्वोपरि महत्व की वस्तु थी। अतः उसी की स्मृति कुम्भ पर्व के रूप में सुरक्षित चली आ रही है।

'कुम्भ' के स्मरण से उस अमृत कुम्भ की जुड़ी घटनाएँ भी स्मृति-पटल पर या कल्पना में आ जाती है। अतः यह स्पष्ट है कि कुम्भपर्व के सन्दर्भ में कहने का अभिप्राय उस अमृतकुम्भ को स्मरण करना है जिसके लिए देवासुर संग्राम हुआ था। अनेक लेखक 'कुम्भ पर्व' का वर्णन वेदों में भी हुआ मानते हैं, लेकिन वेदशास्त्री इसको तर्क संगत नहीं मानते हैं। उनके मतानुसार वेदों में वर्णित 'कुम्भ' शब्द विभिन्न अर्थ रखता है। उसका सम्बंध कुम्भ पर्व से सीधे नहीं है। हाँ पुराणों में कुम्भ पर्व कथा तथा उसका महात्म्य वर्णित है जिसका संक्षेप में वर्णन इस प्रकार है।

महर्षि दुर्वासा के शाप से जब देवराज इन्द्र अन्य देवताओं सहित श्रीविहीन हो गये तो असुरों ने देवलोक पर चढ़ाई कर दी। तव वे डर कर ब्रह्माजी के पास गये। ब्रह्माजी उनको भगवान विष्णु के पास क्षीरसागर में ले गये। विष्णु भगवान ने उन्हें सहायता का वचन दिया और देवताओं को परामर्श दिया कि वे समुद्र मन्थन करें। उसमें से अन्य रत्नों के साथ अमृत की प्राप्ति होगी, जिसे पीकर वे अमर हो जाएँगे और समुद्र-मन्थन में वे सुमेरू पर्वत को मथानी तथा वासुकि नाग को रस्सी बनाएँ। चूँकि यह कार्य अकेले देवताओं के वश का नहीं था इसलिए वरावर हिस्से का लोभ देकर इसमें असुरों का भी सहयोग लेने की योजना वनाई गयी। इस कार्य के लिय असुरराज वलि को निमन्त्रण दिया गया। अमृत पान के लालच से दानवगण तैयार हो गये। सुमेरू पर्वत को मथानी के रूप में नागराज द्वारा उखाड़कर समुद्र में रखा गया। भगवान विष्णु ने उसकी डूबने से रक्षा की। मन्थन के समय वासुकि नाग के मुख की तरफ असुर तथा पूँछ की तरफ देवतागण रहे।

समुद्र-मंथन में सर्वप्रथम हलाहल विष निकला। जिसे उसके भयंकर रूप को शान्त करने के लिए भगवान शिव ने अपने कण्ठ में धारण कर लिया। उसके बाद एक-एक करके रत्न निकलते गये। ऐरावत हाथी, उच्चैश्रवस अश्व, इन्द्र ने लिये। श्री लक्ष्मीजी को भगवान विष्णु ने लिया। मन्थन से जो मदिरा निकली उसे दानव पीते रहे। कामधेनु गाय, पारिजात वृक्ष, रम्भा, अप्सरा, कौस्तुभ मणि, वारुणी, बालचन्द्र शंख हरिधनु तथा अमृत कलश लेकर धन्वतरी प्रकट हुए। अमृत के निकलते ही समुद्र मन्थन बन्द हो गया। अमृतपान के लिए असुरों तथा देवताओं में छीनाझपटी हुई। इस छीनाझपटी में अमृतकलश से १२ स्थानों पर अमृत छलककर गिरा जिनमें ८ स्थान स्वर्गलोक में तथा ४ स्थान भूलोक पर हैं। इन्ही ४ स्थानों पर कुम्भ पर्व का आयोजन होता है।

देवतागणों तथा असुरों में अमृत के लिए झगड़ा होते देख भगवान विष्णु ने अपना रमणी (मोहिनी) रूप धारण किया और असुरों तथा देवताओं को बराबर अमृत बाँटने के लिए राजी किया। इसके लिए दोनों पक्ष पंक्तिबद्ध होकर बैठ गये। अपने रूप से दैत्यों का मन मोहते हुए भगवान विष्णु ने पहले देवताओं की पंक्ति में अमृत वितरण किया, लेकिन इसी समय 'राहु' नामक दैत्य चुपके से देवताओं की पंक्ति में आकर बैठ गया। सूर्य और चन्द्रमा ने राहु के छल के बारे में मोहिनी रूप भगवान को संकेत किया। उन्होंने तत्काल राहू का गला काट दिया। किन्तु अमृत पीकर वह अमर हो गया था इसलिए वह धड़ से शीश अलग होने पर भी मरा नहीं और आज भी वह ग्रहण के समय सूर्य और चन्द्रमा को ग्रास करके अपना वैर ही साधता है।

एक अन्य कथा के अनुसार जव समुद्र-मन्थन से अमृत कलश लेकर धन्वतरी प्रकट हुए तो बृहस्पति के संकेत पर इन्द्र पुत्र जयन्त अमृत कलश लेकर भागा। दानव भी उसके पीछे भागे। वारह दिनों की अपनी इस दौड़ में जयन्त ने जहाँ कहीं भी इस कलश को रखा उन-उन स्थानों पर उन्हीं ग्रह योगों का संयोग होने पर कुम्भ पर्व मनाया जाता है।

कुम्भे गुरौ हरिद्वारे, तीर्थराजे वृक्षे गुरौ।
धारायपं च गजे जीवे, गोदावर्या कर्कगे गुरौ।।

कुम्भराशि के बृहस्पति होने पर हरिद्वार में, वृक्ष राशि के बृहस्पति होने पर उज्जैन में तथा सिंह राशि के बृहस्पति होने पर नासिक में पूर्ण कुम्भ आयोजित होते हैं। इसके अतिरिक्त हरिद्वार और प्रयाग में प्रति छठे वर्ष अर्द्धकुम्भ भी मनाये जाते हैं। जबकि यह परम्परा नासिक और उज्जैन में नहीं है।

हरिद्वार - प्रायः हरिद्वार का कुम्भ चैत्र-वैशाख मास में मेष संक्रान्त अर्थात् वैशाखी के अवसर पर १३-१४ अप्रैल को होता है। वैसे कुम्भ स्थान की ये सभी प्रमुख तिथियाँ हैं। लेकिन पूर्व भी बसंत पंचमी, पूर्णिमा के बड़े महत्व के स्नान होते हैं।

कुम्भे योगे हरिद्वारे यच्च स्नानेन यत्फलम्।
नाश्वमेध सहस्रेण तत्फलं लभते भुवि।।

हजारों अश्वमेध यज्ञ करने से जो फल प्राप्त नहीं हो सकता, वही पुण्य लाभ हरिद्वार में कुम्भ महापर्व मे स्नान से होता है।

गंगा स्नान का इतना महत्व है कि यदि कोई भूले से गंगा स्नान कर ले या गंगा का स्मरण मात्र कर ले तो पापों से मुक्ति मिल जाती है। कुम्भ कथा के वर्णन के बाद हरिद्वार के अतिरिक्त तीन अन्य स्थानों पर पड़ने वाले कुम्भ पर्वों का पौराणिक वर्णन संक्षेप से हम करेंगे। कुम्भ पर्व का वर्णन विष्णु पुराण, रुद्र पुराण तथा भागवत पुराण में मिलता है।

प्रयागराज - प्रयागराज में कुम्भ गंगा-सरस्वती-यमुना नदियों के संगम पर होता है। हरिद्वार तथा प्रयाग में अर्द्धकुम्भ भी होता है। प्रयाग में कुम्भ सर्दियों में माघ महीने में होता है। स्कन्द पुराण में प्रयागराज कुम्भ का वर्णन इस प्रकार दिया है-

मेष राशिगते जीवे मकरे चन्द्र भस्करो।
अमावस्या तदायोगः कुम्भास्पतीर्थ नाभके।।

जब बृहस्पति मेष राशि में तथा चन्द्रमा मकर राशि में होते हैं, तब प्रयाग में अमावस्या को कुम्भ पर्व का योग आता है। इस राशि में यहाँ पर स्नान करने का अत्यंत महत्व है। महाराजा हर्ष अत्यन्त धर्म अनुयायी था और कहा जाता है कि वह कुम्भ के अवसर पर गंगा किनारे अपना सर्वस्व दान कर देता था।

उज्जैन - उज्जैन के कुम्भ को 'सिंहस्थ पर्व' के नाम से जाना जाता है। उज्जैन क्षिप्रा नदी के तट पर बसा है जो कभी विक्रमादित्य की राजस्थली थी। जहाँ नीतिशतक के लिखनेवाले - "महाराजा भर्तृहरि" तथा कालिदास जैसे महान कवि रहे हैं। उज्जैन में क्षिप्रा नदी के पावन जल में स्नान करने का आनन्द फल मिलता है। स्कन्द पुराण के अनुसार वहाँ पर कुम्भ निम्न योग में पड़ता है।

सिंह राशि गते जीवे, मेषस्थे च दिवाकरे।
तुला राशि गते चन्द्रे, स्वाति नक्षत्र संयुते।।

जब सिंह राशि का गुरु, मेष राशि का सूर्य तथा तुला राशि का चन्द्रमा और स्वाति नक्षत्र का योग पड़ता है तो उज्जैन में कुम्भ का योग होता है। सिंह की दशा में गुरु होने के कारण ही इसको सिंहस्थ नाम से पुकारा जाता है।

नासिक - नासिक महाराष्ट्र में गोदावरी के तट पर बसा हुआ है। उत्तर भारत में गंगा की तरह दक्षिण में गोदावरी भी पूजनीय रही है। अनेक अवसरों पर श्रद्धालु लोग गोदावरी के तट पर स्नान करते हैं। नासिक भी पावन तीर्थ है। कभी यह स्थान चालुक्यवंश के अधीन रहा है। स्कन्द पुराण के अनुसार यहाँ पर कुम्भ योग में पड़ता है-

कर्के गुरुस्तथा भानुश्चन्द्र क्षयस्तथा।
गोदावर्या तदाकुम्भो जायतेऽवनि मण्डले।।

जब कर्क राशि में गुरु, सूर्य, चन्द्र का योग अमावस्या को होता है, तो गोदावरी के तट पर नासिक में महाकुम्भ होता है।

अन्य कुम्भ स्थलों की तरह स्नान करने की होड़ में नासिक भी पीछे नहीं रहा। सैकड़ों साल पहले वहाँ भी संन्यासियों का आपस में झगड़ा हुआ तथा बड़े स्तर पर नर-संहार हुआ था तथा दो कुम्भ भी बन्द रहे। फिर पेशवा राजाओं के समझौते से कुम्भ-स्नान शुरू हुआ।

कुम्भ पर्व क्यों?

भारतीय मनीषियों ने आदि काल से अपनी महत्वपूर्ण घटनाओं और व्यक्तियों के स्थायित्व प्रदान करने के लिए केवल इतिहास और साहित्य की ही रचना नहीं की; अपितु उन्हें जन-जीवन के सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक परम्पराओं के रूप में जोड़ दिया। तनिक ध्यानपूर्वक विचार करें तो हम पाएँगे कि हमारे राम नवमी, कृष्ण जन्माष्टमी और यहाँ तक कि पूर्णमासी, चतुर्थी इत्यादि के व्रत हमें इतिहास के हमारे पूर्व पुरुषों और उनके कार्यों की स्मृति दिलाते हैं। रामनवमी का व्रत करते हुए हम केवल राम का स्मरण ही नहीं करते, बल्कि उनके जीवन की और उनके समकालीन समय की सभी महत्वपूर्ण बातें भी हमारे मानस पटल पर अंकित हो जाती हैं। कोई भारतीय चाहे वह रामायण पढ़ने में रुचि रखता हो या न रखता हो लेकिन रामनवमी के दिन वह व्रतोत्सव देखता और सुनता तो है और तब भी उसकी जिज्ञासा उसे राम के विषय में कुछ जानने की

उत्सुकता प्रदान करती है। यत्किंचित उसे जानकारी मिल भी जाती है। हर वर्ष मिलनेवाली इन जानकारियों से उसके ज्ञान की वृद्धि होती है। उसकी स्मृतियों में सम्पूर्ण रामकथा अपने सभी पहलुओं के साथ धीरे-धीरे समाती जाती है और स्मृतियाँ एक दिन संस्कार के रूप ढल जाती हैं। इस प्रकार वह जाने अनजाने भारतीय संस्कृति के उच्चतम आदर्श चरित्रों से जुड़ जाता है और सदा उससे अनुप्राणित रहता है। इससे हमारा इतिहास अमर हो जाता है। हमारे इतिहास की अलग से शिक्षा देने की आवश्यकता जनसाधारण के लिए नहीं होती। निपट निरक्षर भट्टाचार्य भी अपने पूर्व पुरुषों के चरित्रों के बारे में जानता होता है। अपने भारतीय इतिहास का उसे अनायास ही ज्ञान प्राप्त हो जाता है और वह इतिहास केवल पोथी की चीज नहीं रह जाता। वह हमारे दैनिक जीवन के व्यवहार में अपना स्थान रखता है। भारत के सभी व्रत, उत्सव, पूजा-पाठ, कर्मकाण्ड, संस्कार इत्यादि धार्मिक कृत्य और सामाजिक सांस्कृतिक समारोह जैसे शारदोत्सव, वसन्तोत्सव आदि सब के सब अपने में एक इतिहास समेटे हुए हैं। बहुत बड़े पोथे में न समानेवाली ऐतिहासिक घटनाओं को अति संक्षिप्त रूप में मन्त्रों एवं सूत्रों में सूत्रित कर दिया है। इतना ही नहीं वैदिक काल से लेकर आजतक की प्रमुख घटनाओं और व्यक्तिओं, उनके आदर्शों सिद्धान्तों और मान्यताओं को जनजीवन के नित्य नैमित्तिक कर्म में समाहित कर दिया है। यूँ कहिए कि इतिहास एवं संस्कृति के सागर को उन्होंने एक छोटे-से गागर में भर दिया है और उस गागर को बड़ी चतुराई के साथ हर भारतीय के कन्धे पर रखा गया है। प्रत्येक भारतीय अपनी इस सांस्कृतिक ऐतिहासिक गागरी के जीवन के लिए अत्यन्त मूल्यवान तत्त्वों को सुधा-वारि की तरह अंजुलि भर भरकर पीता हुआ स्वयं को अपने पूर्व पुरुषों की तरह जीवन्त, स्फूर्त और विशिष्ट अनुभव करता है। यह इसी अमृत कुम्भ का प्रभाव है कि प्रत्येक भारतीय अपने को अमृत पुत्र मानता है। मनीषियों ने बार-बार भारतीयों को अमृत पुत्र ही सम्बोधित किया है। जिनकी संस्कृति, जिनका इतिहास, जिनके जीवन मूल्य कभी मरते नहीं, कभी अवशिष्ट नहीं होते, कभी भूत की वस्तु नहीं हो जाते। वे सदा सनातन, वर्तमान और अमर होते हैं। इसीलिए भारत अमृत भूमि है और भारतीय अमृत पुत्र। इसलिए भारतीय सभ्यता संस्कृति सदा सनातन अमर है।

कुम्भ पर्व हमारे इतिहास की एक महान घट[illegible] की स्मृति को संजोये हुए है। दो संस्कृतियों, [illegible] विचारधाराओं, दो जीवन पद्धतियों के युग प्रवर्त[illegible] संघर्ष और उसके परिणाम की स्मृति है। प्राचीन काल में देव-मनुष्यों को पीड़ा देनेवाले दानवों के संहार [illegible] एक अनिवार्य प्रयोजन था। परन्तु असुरों [illegible] ताण्डव-लीला केवल बहिर्जगत तक ही सीमित नह[illegible] रहती, अन्तर्जगत में सुवृत्तियों और कुवृत्तियों के बी[illegible] जो निरन्तर संघर्ष चलता रहता है, उपनिषदों में उ[illegible] भी देवासुर-संग्राम कहा गया है। वर्तमान काल [illegible] मनोराज्य का यह संग्राम पौराणिक देवासुर-संग्राम की अपेक्षा अधिक भयावह है। अतीत संघर्ष प्रायः स्थूल जगत की सीमा को पार न कर पाता था, परन्तु आधुनिक द्वन्द्व अन्तर्जगत से उत्पन्न हो तथा नित्य के जीवन में प्रयारित हो मानवता नर ही कुठाराघात करने चला है। आधुनिक जगत के लिए नैति उन्नति एवं आध्यात्मिक अनुभूति सबसे अधिक वांछनीय है।

देवासुर-संग्राम और देवताओं के द्वारा अमृत लाभ, असुरों के वैभव के विनाश अर्थात असुरत्व पर देवत्व की विजय भौतिकता नर आध्यात्मिकता का वर्चस्व, नश्वर से ऊपर उठकर ईश्वरत्व को, मृत्यु को जीतकर अमृतत्त्व को प्राप्त करने की कथा कुम्भ पर्व से जुड़ी हुई है। कुम्भ पर्व पर उस अमृत कुम्भ का स्मरण करते हैं, जिसके लिए देवासुर संग्राम हुआ था। उस संग्राम में जिन जीवन मूल्यों का टकराव था, अपने जीवन के उन्हीं मूल्यों के संघर्ष पर हम विचार करने को अनायास ही उद्यत हो जाते हैं। अमृत कुम्भ के अमृत को प्राप्त की विधि क्या है? उस अमृत पान का प्रतिफल क्या है? और सबसे बड़ी बात अमृत हमारे जीवन में कहाँ है? हमारे संसार में कहाँ है? अनायास ही इन विचारों का यह मन्थन आसुरी प्रवृत्ति वालों को तो नहीं, किन्तु दैवी सम्पदा सम्पन्न जनों को आज भी अमृत कुम्भ की उपअब्धि करा देता है। कुम्भ पर्व भी हमारा धार्मिक, समाजिक, सांस्कृतिक समारोह ही है। कुम्भ पर्व हमारे इतिहास की एक अति विशिष्ट घटना का स्मरण कराता है। हम उससे इतिहास प्राप्त प्रेरणा तो लेते ही हैं, वर्तमान का समाधान भी उसमें ढूँढ़ते हैं। कुम्भ पर्व इसीलिए मनाया जाता है।

रोटरी एवं स्वामी विवेकानन्द

– प्रो०(डा०) उषा वर्मा
छपरा

रोटरी और स्वामी विवेकानन्द के साहित्य से गुजरते हुए मुझे यह एहसास हुआ कि रोटरी के आदर्शों और स्वामी विवेकानन्द के विचारों में गजब की समानता है। किन्तु, यह महज संयोग ही नहीं है। इसे यह कहकर भी टाला नहीं जा सकता कि महान विभूतियाँ प्रायः एक जैसा सोचती हैं। निश्चय ही दोनों के बीच कोई कार्य-कारण सम्बंध है, कोई गहरा नाता है।

सितम्बर १८९३ की ग्यारहवीं तारीख संसार के इतिहास के लिए खास तारीख है। भारत के लिए तो एक तरह से इसके पुनर्जन्म की तारीख है वह। उसी दिन से अमेरिका के शिकागो शहर में १७ दिवसीय धर्म सभा का आयोजन किया गया था। शिकागो के शिल्प-प्रासाद (Art Institute) नामक भवन छः-सात हजार सुशिक्षित नर-नारियों से भरा हुआ था। सामने मंच पर संसार भर के प्रायः सभी जाति-धर्म-समुदायों के विशिष्ट विद्वान प्रतिनिधि विराजमान थे। उसी दिन स्वामी विवेकानन्द ने अपना वह पहला क्रांतिकारी ऐतिहासिक भाषण दिया था जिससे वे रातोंरात विश्वविख्यात हो गये थे। भारत की छवि भी एकवारगी बदल गयी थी। दुनिया की नजरों में गुलाम, असभ्य, असंस्कृत और याचक समझा जाने वाला भारत दाता के पद पर आसीन हो गया था। सभ्य समझी जाने वाली जातियों ने पहली बार तहे दिल से महसूस किया था कि भारत से वहुत कुछ सीखा जा सकता है। भाषण की वात तो वाद की है। स्वामीजी के सम्बोधन मात्र से सभा परिवार में बदल गई थी। स्वामीजी ने परम्परा से हटकर 'वहनों और भाइयों!' कह कर सभा को सम्वोधित किया था और फिर सभागार दो मिनट तक तालियों की गड़गड़ाहट से गूँजता रहा। फिर जो सिलसिला शुरू हुआ स्वामीजी के भाषणों का तो शिकागो, बोस्टन, न्यूयार्क, इंगलैंड, स्विट्जरलैंड, लंदन आदि स्थानों पर लगातार तीन वर्षों तक चलता रहा। उस अवधि में स्वामीजी ने ३१ मई १८९३ को भारत से शिकागों के लिए प्रस्थान किया था और ३० दिसम्बर १८९६ को भारत के लिए प्रस्थान किया। स्वामीजी ने विविध विषयों पर अनेक भाषण दिये। इतने कि अमेरिका-इंगलैंड पूरी तरह उनके वेदान्ती विचारों आप्लादिव हो उठा। किसी ने उन्हें 'तूफानी हिन्दू' (Cyclonic Hindu) कहा तो किसी ने महात्मा बुद्ध से उनकी तुलना की। उन्हें धर्म सम्मेलन में उपस्थित सबसे महान मनुष्य सावित करने की कोशिश की गई। वे मुक्त कंठ से प्रशंसित हुए। वेपनाह मुहव्वत मिली। आपार आदर-सत्कार मिला। उनके भक्तों और शिष्यों की भारमार हो गई। कुछ लोगों ने उनसे वेदान्त और योग की दीक्षा ली और वहीं उनके विचारों के प्रचार-प्रसार में जुट गए। कुछ उनके साथ भारत आये, यहीं के होकर रह गये और आजीवन भारत की सेवा की।

उन्हीं दिनों यानी १८९६ में पॉल हैरिस कानून की प्रैक्टिस करने शिकागो आये थे। वहाँ की हवा में स्वामी विवेकानन्द की सुगन्ध बरकरार थी। उनके चुम्बकीय व्यक्तित्व के आकर्षण का असर था। उनके विचारों की अनुगूँज थी। निश्चय ही पॉल हैरिस का मन स्वामीजी की मानसिक तरंगों के गुरुत्वाकर्षण के दायरे में आ गया होगा। स्वच्छ-सात्विकमन के लिए ऐसी तरंगे कुछ अधिक ही असरदार साबित होती हैं। पॉल हैरिस के मन में ऐसे क्लब की स्थापना का ख्याल आया जो विश्व-बंधुत्व की भावना से ओत-प्रोत और सम्पूर्ण मानवता की सेवा के प्रति समर्पित हो। ख्याल संकल्प और संकल्प कार्य में रूपान्तरित हुआ। २३ फ़रवरी १९०५ को उसी शिकागो में उन्होंने विभिन्न व्यवसायों

के मात्र तीन साथियों को लेकररोटरी क्लब की शुरूआत कर दी, जहां स्वामीजी ने विश्वबन्धुत्व की आवाज बुलन्द की थी। पॉल हैरिय ने क्लब का नाम रोटरी इसलिए रखा कि वे तीनों सदस्य In Rotation अलग-अलग स्थानों पर मिल-बैठ कर मानवता की सेवा को कार्य रूप में परिणत करने की योजनाएँ बनाते थे। उनका यह मिलना, उनके उसूल, उनके क्रिया कलाप इतने अहम् होते चले गये कि १६२१ में रोटरी, रोटरी इंटरनेशनल के नाम से विख्यात हुई और धीरे-धीरे संसार भर में उसकी शाखाएँ फैल गईं। आज संसार में लगभग १५६ देशों में २६ हजार रोटरी क्लब हैं। १,२०१,५६५ रोटेरियन हैं। रोटेरेक्ट क्लब, इनर-एक्ट क्लब, इनर व्हील एवं ग्रामीण रोटरी दल हैं, सो अलग।

प्रति वर्ष एक जुलाई को रोटरी अंतर्राष्ट्रीय के अध्यक्ष अपना पदभार ग्रहण करते ही संसार के सभी रोटेरियन को एक संदेश-सूत्र में पिरोते हैं। वही संदेश उस वर्ष का नारा होता है। रोटेरियन से उम्मीद की जाती है कि वे उस नारा पर अमल करें। उसे जीने की कोशिश करें। यह नारा रोटरी के जीवन-दर्शन का दस्तावेज होता है। उसकी धुरी मानवता है। उसका पहिया मानव सेवा के विविध पहलू हैं। उस नारा में 'कभी सेवा के लिए नई दुनिया की तलाश' की बात की जाती है तो कभी- 'स्व से परे देखने' की। कभी दूसरों की सेवा में वास्तविक आनन्द' को रेखांकित किया जाता है तो कभी- 'जो करें उसमें आस्था रखें और जिसमें आस्था रखें वही करें'- पर बल दिया जाता है। कभी 'मित्र-बनने' पर जोर दिया जाता है तो कभी इस बात पर कि 'अपने आचरण से दिखाओ कि रोटरी को मानवता की चिन्ता है।' इस वर्ष रोटरी के सपनों के अनुकरण के आह्वान का नारा है 'Follow your Rotary Dream' रोटरी का सपना मानवता के हित का सपना है। मानवीय चेतना के विकास का सपना है। मानव निर्माण के माध्यम से स्वस्थ सुखद विश्व निर्माण का सपना है। रोटरी इन सपनों में स्वामी विवेकानन्द के उन सपनों को आसानी से खोजा जा सकता है, जिनकी चर्चा उन्होंने विदेशों में की थी और अपने देश में जीवन पर्यन्त करते रहे थे। उन्होंने कहा था- "सेवा को कर्तव्य नहीं, अधिकार मानो।" परहित से बड़ा कोई धर्म नहीं है। "तुम्हें सेवा का सुयोग मिला, इसके लिए आभारी बनो।" 'स्वार्थ से ऊपर उठो।' 'त्याग में आनन्द है।'

स्वामीजी ने कहा था कि हम जैसा सोचते हैं वैसा ही हो जाते हैं। और कि पूरा पुस्तकालय कंठाग्र करने से वेहतर है- मानव निर्माण सम्बंधी चन्द बातों को जीवन में उतार लिया जाय। साल भर रोटरी का एक उदार नारा रोटेरियन के मन प्राणों में गुँजवाने के पीछे यही मंशा काम करती है कि रोटेरियन इस नारा को अपने जीवन में उतार लें। और इस तरह रोटरी के माध्यम से रोटेरियन के नाम पर विश्व में मानव निर्माण का कार्यक्रम चलता रहे। स्वामीजी ने मानव निर्माण पर बहुत बल दिया था। उनकी मान्यता थी कि "मनुष्य केवल मनुष्य भर चाहिए, बाकी सब कुछ अपने आप हो जाएगा।" रोटरी स्वामीजी के सपनों को साकार करने का एक सशक्त माध्यम है वशर्ते कि हम हमेशा पूर्वाग्रह रहित और निष्पक्ष भाव से स्वयं को उसकी चतुर्मुखी कसौटी पर कसते रहें और रोटरी के सपनों को अमली जामा पहनाते रहें। रोटरी का सपना स्वामीजी का सपना है और स्वामीजी का सपना उन तमाम ऋषि-मुनियों का सपना है, जिन्होंने सम्पूर्ण संसार को एक परिवार के रूप में देखा था और तहे दिल से प्रभु से प्रार्थना की थी कि-

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा काश्चिद् दुःख भाग्भवेत्॥

पुस्तक समीक्षा

मानसिक तनाव से मुक्ति के उपाय

लेखक - स्वामी गोकुलानन्द

प्रकाशक - रामकृष्ण मठ, धन्तोली, नागपुर 440012

पृष्ठ संख्या - 166   मूल्य - रु. 30.00

प्रस्तुत पुस्तक रामकृष्ण मिशन, दिल्ली के सचिव एवं मनस्वी विद्वान श्रीमत् स्वामी गोकुलानन्द जी के अँग्रेजी में दिये गये व्याख्यानों का हिन्दी रूपान्तर है। वर्तमान काल में संसार के सभी देशों के लोग मानसिक तनाव से ग्रस्त रहकर नाना प्रकार के रोगों के शिकार हो रहे हैं। मानसिक तनाव से हमें कैसे मुक्ति मिले, यह बड़ी भीषण समस्या है। आज के मनुष्य का वाह्य जीवन वैज्ञानिक संसाधनों से युक्त होकर जितना ही सम्पन्न होता जा रहा है, उसका आन्तरिक जीवन आध्यात्मिक मूल्यों से दूर होकर उतना ही विपन्न होता जा रहा है। फलतः वाहरी चाकचिक्य के बीच वह आन्तरिक हाहाकार से छटपटा रहा है। हमारा हृदय संकीर्ण हो गया है। हमारी मानवीय संवेदनाओं और मूल्यों का क्षरण हो गया है। स्वार्थ हमारी सांस हो गया है और भोगैषणा हमारी दृष्टि। फलतः जहाँ भी हमारे स्वार्थ में टकराहट होती है, हम तनाव-ग्रस्त हो जाते हैं, हमारी नींद उड़ जाती है, हम हिंसा, क्रोध, आदि विकृतियों के शिकार हो जाते हैं। प्रश्न है, हम इस तनाव से कैसे बचें?

स्वामी गोकुलानन्द जी महाराज ने इन समस्याओं से ग्रस्त व्यक्तियों को निकट से देखा है और अपने गहन अध्ययन, प्रखर चिन्तन तथा तीव्र अनुभवों के द्वारा इस समस्या से मुक्ति के अनेक अमूल्य सुझाव इस पुस्तक में प्रस्तुत किये हैं। उन्होंने बताया है कि आत्म-संयम, आत्मानुशासन और स्व-विस्तार के द्वारा हम तनाव मुक्त हो सकते हैं। परन्तु यह कैसे सम्भव हो? इसके बड़े ही सरल एवं उपयोगी सुझाव उन्होंने इस पुस्तक में प्रस्तुत किये हैं जिन्हें अपनाकर हम तनाव से मुक्त हो सकते हैं।

अँग्रेजी में प्रकाशित How to Overcome Mental Tension नामक यह मूल पुस्तक हाथों-हाथ विक गयी। इसका हिन्दी अनुवाद प्रकाशित कर रामकृष्ण मठ, नागपुर ने बड़ा ही संस्तुत्य कार्य किया है। इसके अनुवादक डॉ. कृष्ण मुरारी ने सरल-सुवोध भाषा का प्रयोग कर पुस्तक को प्रांजल और लोकोपयोगी वना दिया है। पुस्तक में यत्र-तत्र मुद्रण और व्याकरण की भूलें परिलक्षित होती हैं, जिनका, आशा है, अगले संस्करण में मार्जन किया जा सकेगा।

वस्तुतः यह पुस्तक सामान्यतः सवके लिए एवं विशेषतः मानसिक तनावों से ग्रस्त व्यक्तियों और युवजनों के लिए अवश्य पठनीय, मननीय और रक्षणीय है।

— डॉ. केदारनाथ लाभ

विवेक शिखा के ग्राहकों से निवेदन

प्रिय मित्रो,

भगवान श्रीरामकृष्ण एवं श्री माँ सारदा के जीवन , आदर्श एवं जीवनदायी संदेशों तथा वेदान्त के उदात्त विचारों को विश्व के कोने-कोने में फैला देने की आवश्यकता का तीव्र अनुभव स्वयं विश्ववंद्य स्वामी विवेकानन्दजी ने ही किया था। पत्र-पत्रिकाएँ इस लक्ष्य की सिद्धि के लिए कारगार औजार साबित होंगी, इस तथ्य को स्वयं स्वामीजी ने गहराई से महसूसा था। उन्होंने बार-बार अपने गुरुभाइयों एवं संन्यासी तथा गृही शिष्यों को इस महत् कार्य की ओर उत्प्रेरित भी किया था।

स्वामी ब्रह्मानन्द को न्यूयार्क से २५ सितम्बर, १८९४ को लिखे अपने पत्र में स्वामीजी ने लिखा था,"तुम लोगों को एक मासिक पत्रिका का सम्पादन करना होगा। उसमें आधी बंगला रहेगी, आधी हिन्दी।" (पत्रावली:पृ०१७८) पत्रिका बिकने की समस्या पर ध्यान देते हुए उन्होंने आलासिंगा पेरुमल को लिखा था, इस तरह की पत्रिकाओं को हमारे शिष्यों द्वारा सहायता मिलेगी...। भारतीय पत्रों की सहायता भारतवासियों को ही करनी चाहिए।।(पत्रा.२.भाग पृ०४७)। पुनः पेरुमल को ही स्वामीजी ने लिखा,...'यदि हो सके तो समाचार-पत्र और मासिक पत्रिका-दोनों ही निकालो। मेरे जो भाई चारों तरफ घूम फिर रहे हैं वे ग्राहक बनायेंगे-मैं भी बहुत ग्राहक बनाऊँगा।" (पत्रा. २ भा. पृ.१८५) पत्रिका के लिए स्वामीजी की भावनाओं को इन्हीं उद्‌गारों से समझा जा सकता है।

स्वामीजी की ऐसी ही प्रेरणा से उत्प्रेरित होकर "विवेक शिखा" का प्रकाशन शुरु किया गया जो विगत उन्नीस वर्षों से निरन्तर लोकप्रिय होती हुई अनवरत रूप से चल रही है। इस बीच कागज एवं मुद्रण की दरों में भयंकर वृद्धि होने के कारण नियमित समय पर हमें इसके प्रकाशन में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है। दारिद्र्य-दोष हमारे सभी गुणों का हरण कर लेता है।

अतएव, विवेक शिखा के कृपालु ग्राहकों एवं ग्राहिकाओं से अनुरोध है कि -

- आप में से प्रत्येक ग्राहक-ग्राहिका कम-से-कम ५-५ नये ग्राहक बनाने अथवा अपने पांच मित्रों एवं सम्बंधियों को उपहार के रूप में विवेक शिखा भेजने की कृपा करें तो विवेक शिखा की अपनी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ करने में मदद मिलेगी।
- आप विवेक शिखा के लिए विज्ञापन भी दे या दिलवा सकते हैं।
- विवेक शिखा के लिए संरक्षक योजना के तहत आर्थिक अनुदान के रूप में रुपये विवेक शिखा के नाम से मनीआर्डर या ड्राफ्ट के द्वारा भेज सकते हैं।
- -हमारे पास विवेक शिखा के पुराने विशेषांक-स्वामी भूतेशानन्द स्मृति अंक (मूल्य १५/-), युवाशक्ति विशेषांक (मूल्य ५/-), रामकृष्ण संघ शताब्दी अंक (मूल्य ६/-) भी काफी बचे हैं। इन्हें खरीदें। एक साथ १० या अधिक प्रतियाँ लेने पर २०% छूट दी जायगी।

जनवरी से वर्ष प्रारम्भ होता है। ग्राहक वर्ष के किसी भी माह से बन सकते हैं। ग्राहकों को जनवरी से सारे अंक उपलब्ध होंगे।

निवेदक

सम्पादक, विवेक शिखा

रामकृष्ण निलयम्,जय प्रकाश नगर,

छपरा-८४१३०१(बिहार)

डाक पंजीयित संख्या - सी.एच.पी.१४-८३

श्रीमती गंगा देवी, जयप्रकाश नगर, छपरा (बिहार) द्वारा प्रकाशित एवं शिवशक्ति प्रिण्टर्स, सैदपुर, पटना-४ में मुद्रित।
सम्पादक : डॉ केदारनाथ लाभ